3·1

आद्य श्री शङ्कराचार्य : आविर्भाव काल

[समीक्षा व निर्णय]

SHARDI
Saravajna Pith
शार्दी
सर्वज्ञपीठ

KEDARNATH
Place of Disappearance
of Shankara
केदारनाथ
निर्याण-स्थल

BADRINATH बदरीनाथ
Uttaramnaya उत्तराम्नाय

DWARKA
Paschimāmnaya
द्वारका
पश्चिमाम्नाय

PURI
Purvamnaya
पुरी
पूर्वाम्नाय

SRINGERI
Dakshinamnaya
शृंगेरी
दक्षिणाम्नाय

KALADY
Birth Place of Shankara
कालटी
आविर्भाव-स्थल

वाराणसी राजगोपाल शर्मा

आद्य श्री शङ्कराचार्य
आविर्भाव काल

[समीक्षा व निर्णय]

सम्पादक
वाराणसी राजगोपाल शर्मा
4/51 हनुमान घाट
वाराणसी–1 (उ. प्र.)
(221 001)

प्रकाशक
अध्यक्ष
श्री आदिशंकर बारहवाँ जन्म शताब्दी समारोह
उत्सव समिति
श्रीशृंगेरी शंकर मठ, कालटी (केरल)
(683574)

मूल्य पचीस रुपये
(डाक महसूल अतिरिक्त)

विषय-सूची

श्री गुरुभ्यो नमः

आमुख

महान आध्यात्मिक युग निर्माता श्री आद्यशंकराचार्य का इस भारत पर अवतरण एक अत्रि गोत्र के कृष्णयजुर्वेद अध्यायी परिवार में, श्री शिवगुरु व सती आर्याम्बा की एक मात्र सन्तान के रूप मे कैप्पिल्लि इल्लम, कालटी में हुआ। इस महान विभूति पुरुष परमानन्द का स्वामि, षण्मत स्थापनाचार्य, दार्शनिकों के शिखामणि, विचारधारा उत्पादकों में अग्रणी, अलौकिक ज्ञानी, मानव बुद्धि, हृदय और धार्मिक विचारों का सम्राट , भारत वर्ष में सर्वथा सार्वभौम आदर प्राप्त विचारक, समस्त विश्व के प्राचीन व आधुनिक विद्वानों व विचारकों द्वारा अभिमानित एवं पूजित व्यक्तित्व का जन्म 788 ई० में कालटी में हुआ था। वह एक ऐसा समय था जब भारत में आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों में विप्लव था और भारत पतन व संत्रास की चरम सीमा पारकर अन्धकार की खाई में लुढ़क रहा था।

भारतीय दार्शनिक परम्परा विश्व मानव की प्राचीनतम परम्परा है। साथ ही सत्य के स्वभाव व प्रकृति तथा उसमें मनुष्य की स्थिति एवं भूमिका की दिशा में विचार करने वाली सर्वाधिक निरन्तर परम्परा रही है। यह विश्वपुरुष का अध्ययन है। श्रीशंकराचार्य के सिद्धान्तों में न केवल प्रकृति के सभी तत्वों का समायोजन है, सर्वधर्म सहनशीलता है वरन् उनको उनके योग्यतानुसार मान्यता व स्थान दिया गया है तथा अन्ततः उन सबको अनन्य एकत्व सत्य (ब्रह्म) की ओर निर्देशित किया गया। यह समायोजन एवं एकीकरण की भावना उनके सिद्धान्तों को भविष्य में विश्वदर्शन की मान्यता दिलायेगी। ये सभी संकीर्ण विचारों से स्वतंत्र तथा परे हैं। ये किसी भी धर्म अथवा दर्शनविश्वास, की अवहेलना नहीं करते क्यों कि वह विचारशक्ति एवं अन्तर्ज्ञान ज्योति पर आधारित है । इस 'सत्य' के ज्ञान का फल इसी जीवन में प्राप्त होता है न कि मृत्यु के पश्चात् किसी अन्य लोक में। यह न केवल नैतिक अनुशासन के महत्व पर जोर देता है बल्कि यह वेदान्त तथ्यों के अध्ययन व समझने में भी सहायक है। माया एवं अविद्या का उन्मूलन ही इसका लक्ष्य है। श्री शंकराचार्य की कृतियों (प्रस्थानत्रय भाष्य व प्रकरणग्रंथ व स्तोत्र आदि, को तीन समूहों में विभाजित किया जा सकता है–पहला साधक और विद्वानों के लिए (त्रय भाष्य), दूसरा औसत बुद्धिजीवियों के लिए (प्रकरण ग्रंथ) तथा तीसरा औसत से कम बुद्धिजीवियों के लिए(स्तोत्र आदि)। इस प्रकार उनकी कृतियाँ समस्त मानव जाति के लिए उपयोगी हैं। श्री शंकराचार्य व्याख्या करने में देदीप्यमान थे, प्रस्तुति में न्यायतर्क युक्त थे एवं उन्होंने मानव विचारधारा को एक नया जीवन प्रदान किया। उनकी व्याख्या अत्यन्त गहरी होकर भी स्पष्ट व असंदिग्ध है, विनम्र व सौम्य होकर भी मन्द नहीं है, सशक्त होकर भी आक्रोशपूर्ण नही है तथा यह समस्त प्रकार से परिपूर्ण है। उन्होंने धर्म को दर्शन के साथ, विश्वासों को विवेक के साथ, लौकिक और अध्यात्म को

उदार दृष्टिकोण के साथ, समाहित किया। श्री शंकराचार्य समाज से दूर भाग नहीं गये और न तो वे एकान्त में केवल व्यक्तिगत उत्तमता के अभिलाषी ही थे। वे अत्यन्त परोपकारी अव्याजकरुणामूर्ति एवं निष्काम्य कर्मठ थे। अनेकता में एकता का दृष्टिकोण रखते थे। उनकी शिक्षाएँ शरीर को प्रभावित कर बेहतर बनाती हैं, बुद्धि को परिष्कृत करती हैं, भावनाओं को उन्नत बनाती हैं, विवेक को प्रकाशमान बनाती हैं। और अध्यात्म को शक्तिमान बनाती हैं। श्री शंकराचार्य सुव्यस्थित विकास तथा अधिकार भेद में विश्वास रखते थे। परम्परा, रूढ़िवाद के पक्षघर तो वे थे परन्तु उन्होंने उसमें एक सुधारक की भूमिका निभायी और उसे शुद्धकर लोकोपयोगी बनाया।

श्री शंकराचार्य को 'शंकर भानु' कहा जाता था अर्थात् एक ऐसा अपूर्व दीप्यमान व्यक्तित्व जिसके स्पर्श मात्र में सभी क्लेशों के निवारण करने की क्षमता हो। श्री शंकराचार्य एक बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे। कुछ लोगों के लिए वे महान वेदवेत्ता थे और प्राचीन विद्याओं, सभी शाखाओं में दक्ष थे। सर्वज्ञपीठ पर आरोहण के लिए उत्तम योग्य व्यक्ति थे। कुछ लोग उन्हें उत्साही निर्भीक विवादक मानते थे जो अपने अकाट्य न्यायतर्कों से अपने विरोधियों को उनके अज्ञान के लिए दंड दे सकता था। कुछ लोग उनको एक अपूर्व कल्पनायुक्त कवि के रूप में देखते हैं जिसके हर श्वास में कविता बसी थी। कुछ लोग उन्हें राष्ट्रवादी मानते थे जिन्होंने इस सिद्धांतपर आस्था रखते हुए उसकी प्राप्ति के लिए अथक प्रयास किया–'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'। कुछ लोग उन्हें महान एकता का शक्तिपुंज मानते हैं जिसने धर्म व अध्यात्म तत्वों के माध्यम से दृष्टिकोणों में एकता लाकर भारतीय एकता को नया बल दिया। कुछ लोग उन्हें गंभीर सिद्धपुरुष एवं मार्गदर्शक के रूप में देखते हैं जिसने परमात्मा को मानव के सामने रखकर और उसकी प्राप्ति के लिए (उसमें सायुज्य हो जाने का) मार्ग दिखाया। कुछ लोग प्रभावित हुए, उनके साथी मानवों को आध्यात्मिक कल्याण की दिशा की ओर ले जाने, एवं अज्ञानी और पीड़ित मानव जाति को उनके निवारण मार्ग पर प्रकाश डालने के प्रयास एवं तीक्ष्ण उत्साहपर। श्री शंकराचार्य के विचार में मतभेद का अर्थ अस्वीकार नहीं है एवं सम-अस्तित्व का अर्थ आत्मसमर्पण नहीं है। उनके पास कोई सेना न थी, न ही वे सांसारिक धन-दौलत व सामर्थ्य के स्वामी थे, न उनकी कोई राजनैतिक अभिलाषा थी, फिर भी उन्होंने ऐसे 'अध्यात्म भावनाओं के साम्राज्य 'की स्थापना की जो आज भी पल्लवित एवं प्रफुल्लित हो रहा है। उन्होंने घोषणा की कि हम जितना समझते हैं उससे कहीं भी अधिक अध्यात्म शक्ति हममें है और हमें इस समस्या का हल ढूँढ़ना है कि 'मैं कौन हूँ।' आधुनिक काल के लोग श्री शंकराचार्य के अनुपम व एकीकृत व्यक्तित्व को मुश्किल से देख या समझ सकते हैं। हम सब यथार्थ में तो अद्वैती हैं, धर्मानुष्ठान में विशिष्टाद्वैती हैं और जीवन व्यवहार व कर्म में द्वैती हैं।

श्री शंकराचार्य ने सारे भारत को–कन्याकुमारी से हिमालय तक–अपनी कर्म भूमि की सीमा मानी और स्वयं एक ऐसी भावना से प्रेरित हुए जो इन्हें सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक बन्धन के सूत्र में बाँधे हुए थी। सनातन वैदिक धर्मरक्षण को एक व्यवस्थित एवं संस्थागत रूप प्रदान करने की आवश्यकता को समझकर तथा समस्त मानव कल्याण

(भूतहित) एवं सामाजिक सुव्यवथित स्थिरता (लोक संग्रह) समाज में लाने के प्रति प्रेरित होकर उन्होंने भारत की चार दिशाओं में चार अम्नायमठों (धर्मराज्य केन्द्र) की स्थापना की, जो चतुर्धाम में या उनके सन्निकट स्थित हैं एवं चार वेद व उनके चार उपदेष्टव्य महावाक्य तथा चार संप्रदायों के प्रतीक के रूप में पुरी जगन्नाथ (पूर्व–ऋग्वेद–प्रज्ञानं ब्रह्म), शृंगगिरि या शृंगेरी (दक्षिण–यजुर्वेद–अहं ब्रह्मास्मि), द्वारका (पश्चिम–सामवेद–तत्वमसि) तथा बदरीनाथ (उत्तर–अथर्ववेद–अयमात्मा ब्रह्म) में स्थापना की थी । दो आम्नाय मठ (पूर्व व पश्चिम) समुद्र तटों पर स्थित हैं जबकि शेष दो (उत्तर और दक्षिण) पर्वतों, नदियों एवं जंगलों के प्राकृतिक वातावरण के बीच में बसे हैं। अपने इस आध्यात्मिक आन्दोलन को दृढ़ता प्रदान करने के लिए उन्होंने प्राचीन संन्यास परम्परा को पुनर्व्यवस्थित किया और उन्हें दस विभागों में विभाजित किया और प्रत्येक संन्यासी को पहिचानने में उनका पृथक-पृथक नाम दिया । उन्होंने सारे भारत का भ्रमण किया–कन्याकुमारी से हिमालय तक और कामरूप से काश्मीर तक । श्री शंकराचार्य ने वेदों तथा उपनिषदों के तत्वों को जो सब महावाक्यों द्वारा सुदृढ़ किये गये हैं, उसे जनसाधारण में प्रवाहित किया और अवैदिक विचारधारा के लोगों के साथ विवाद करके उन्हें परास्त किया । अपने बत्तीस वर्ष के जीवन के अन्तिम काल में श्री शंकराचार्य काश्मीर आये, जहाँ उन्होंने अपने विरोधियों को शास्त्रार्थ में परास्त किया और उन्हें श्री माता सरस्वती-शारदा के आसन 'सर्वज्ञपीठ' पर आसीन किया गया । श्री शंकराचार्य ने अपने अल्प जीवन काल में यह सिद्ध किया है कि वे उस काल में एक अतुल्य, दशधर्मलक्षणसंपन्न विभूतिपुरुष एवं विलक्षण क्षमता के व्यक्ति थे और भारत में उनके समान एक सपूत ने भी अभी तक जन्म नहीं लिया है । पूर्व युग में भगवान ने क्षत्रिय कुल में जन्म लेकर श्रीराम और श्रीकृष्ण के पूज्य नाम से, इस कर्मज्ञानमयी भारतभूमि में समस्त मानव के कल्याण के लिए सद्धर्म, कर्म एवं उपासना का मार्ग दिखाकर समाज को सुव्यवस्थित किया था और अब इस युग में उस कार्य की पूर्ति के लिए भगवान ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर आचार्य शंकर के नाम से प्रख्यात हुए और लोकहित, लोककल्याण एवं इह पर में आनन्दानुभव करने हेतु सद्धर्म एवं ज्ञान मार्ग के उपदेश द्वारा समाज को सुव्यवस्थित किया तथा श्रीराम और श्रीकृष्ण के अवतार उद्देश्यों की पूर्ति की । श्री शंकराचार्य काश्मीर से बदरिकाश्रम पहुँचे और वहाँ से वे हिमालय के केदारनाथ धाम गये जहाँ उन्होंने अपने पार्थिव शरीर को त्यागकर परमपद को प्राप्त किया ।

ऐसे विभूति पुरुष जो, सर्वशास्त्रनिष्णात्, आध्यात्मिक युग गुरु, समन्वयवादी सन्त एवं परमयोगी, श्री शंकराचार्य, जगद्गुरु, जो सर्वमानव के आध्यात्मिक अग्रणी थे, एक गंभीर मुनिश्रेष्ठ थे, ईश्वर प्रेरणा से उत्तेजित एक उच्चकोटि कवि थे, सदा सत्य की खोज में तत्पर थे, एक तीव्र तार्किक, ज्ञानी, सिद्ध महापुरुष थे, एक उत्साही नैतिक व धार्मिक सुधारक थे, ऐसे महान को हम सब झुककर आदरपूर्वक चरण वन्दना करें और श्रद्धासुमन अर्पित करें । (सम्पादक की कलम से)

श्री आदि शंकराचार्य का बारहवाँ जन्मशताब्दी समारोह पूरे भारत में 'श्रीशंकराचार्य जयंती', 21-4-1988 के शुभदिन से अगले वर्ष 1989 ई० के 'श्री

शंकराचार्यजयंती' शुभदिन तक मनाया गया। भारत की केन्द्रीय सरकार ने इस उद्देश्य को कार्यान्वित करने के लिए एक विशेष समिति का गठन किया, जिसके अध्यक्ष माननीय प्रधानमंत्री थे। राज्य सरकारों ने वर्षपर्यन्त चलने वाले इस समारोह में केन्द्र की सरकार का अनुसरण किया।

दक्षिणाम्नाय शारदापीठ व शृंगेरी मठाधीश श्री 1008 जगद्गरु शंकराचार्य की असीम अनुकम्पा से श्री शंकराचार्य के जन्मस्थल केरल प्रांत के कालटी में भी एक समारोह समिति का गठन किया गया। इस समिति द्वारा आयोजित एवं निर्वाहित 'श्री शंकराचार्य ज्योति की दिग्विजय यात्रा', जो ज्योति कालटी में आदि शंकराचार्य की मूर्ति के सम्मुख वैदिक पूजा पाठ के उपरान्त प्रज्वलित की गयी थी, को सफलता पूर्वक संपन्न किया गया। एक वाहन पर केरल संप्रदाय के अनुरूप निर्मित एक मन्दिर में श्री आदिशंकराचार्य की मूर्ति तथा इस 'ज्योति' को रखकर इस ज्योतिरथ ने अपनी ऐतिहासिक विजययात्रा का शुभारम्भ कालटी से दिनांक 21-11-1988 को किया। केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, हरियाणा आदि प्रदेश राज्यों से गुजरते हुए और उत्तर प्रदेश के गढ़वाल क्षेत्र से होकर यह ज्योतिरथ दिनांक 18-5-1989 के दिन हिमालय सीमा के केदारनाथ धाम पहुँचा जहाँ आदि शंकराचार्य ने बत्तीस वर्ष की आयु में अपने अवतार लक्ष्य की पूर्ति पर अपना पार्थिव शरीर त्याग दिया था।

इस शंकराचार्य ज्योति का आम जनता ने देश भर में सब जगह जहाँ-जहाँ ज्योतिरथ ने दर्शन दिया, जितने उत्साह एवं सत्कार पूर्वक स्वागत तथा अभिनन्दन किया, वह आशा और आकांक्षा से अधिक था। श्री शंकराचार्य के आविर्भाव के बारह सौ वर्षों के पश्चात् भी धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में उनकी देन आज तक लोगों के हृदय की गहराइयों में बसी है। इस 'ज्योति दिग्विजय यात्रा' के दौरान लोगों में श्री शंकराचार्य के प्रति असीम आदर व श्रद्धा तथा उनके उपदेशों व शिक्षाओं में अपार रुचि, भरपूर व स्पष्ट दृष्टिगोचर हुई।

श्री शंकराचार्य का बारहवाँ जन्मशताब्दी समारोह जो सारे भारत में जगह-जगह विविध रूप से उत्सव के रूप में मनाया गया, इसके प्रतिफल में आम जनता में महान प्रभाव और आस्था को देखकर, श्री शंकराचार्य के जन्मकाल को ईसा पूर्व काल में मानने वाले कुछ लोगों ने कुछ पुस्तकें प्रकाशित की तथा पत्रिकाओं में लेख लिखे जो असत्य एवं अप्रामाणिक थे। कुछ ने तो भारत सरकार द्वारा आयोजित श्री शंकराचार्य की बारहवीं जन्मशताब्दी समारोह की कड़ी आलोचना भी की है तथा निकट भविष्य में श्री शंकराचार्य की पचीसवीं जन्मशताब्दी समारोह मनाने की एवं बाह्य प्रदर्शन की धमकी दी है। श्री शंकराचार्य का जन्म 509 ईसा पूर्व काल के समर्थक तथा कांची में श्री आदि शंकराचार्य द्वारा पाँचवें आम्नाय मठ की स्थापना को मानने वाले लोगों ने सरकार की प्रकाशिकाओं में अपने कथनों को प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त कर ली तथा न मालूम कैसे उन्हें मान्यता भी मिल गयी। इसमें क्या रहस्य है ? कौन् सूत्रधार हैं ? श्री शंकराचार्य की

बारहवीं जन्मशताब्दी समारोह के संदर्भ में श्री पि० के० सुन्दरम् द्वारा लिखित और भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय द्वारा प्रकाशित एक पुस्तिका भी निकाली गयी जिसका नाम 'श्री शंकराचार्य–हिज विजन् आफ् स्पिरिचुअल यूनिटी' है। उक्त पुस्तिका के पृष्ठ दो में लेखक नें श्री शंकराचार्य के जन्मकाल को '509 ईसा पूर्व से 788 ई० तक के काल के बीच कहीं' माना है। इस 'ईसा पूर्व का जन्मकाल' किस प्रकार योग्य और अनुकूल है जबकि भारत सरकार की स्वघोषणा है कि 1988-1989 में महान श्री शंकराचार्य का बारहवाँ जन्मशताब्दी समारोह सारे भारत में आयोजित किया जाय ? श्री शंकराचार्य के बारहवें जन्मशताब्दी समारोह की यादगार में पुस्तिका प्रकाशित हुई है अतः उक्त कथन 'ईसा पूर्व काल का' कहाँ तक प्रासंगिक है, सो विषय समझ के परे है ? 509 ईसा पूर्व के जन्मकाल का निर्देशन इस संदर्भ में करने का क्या औचित्य है जब हम सारे राष्ट्र में बारहवाँ जन्मशताब्दी समारोह मना रहें हैं न कि पचीसवाँ ? भारत सरकार ने किस प्रकार श्री पि० के० सुन्दरम् को इस प्रकार का अप्रामाणिक अस्पष्ट काल संकेत करने की अनुमति दे दी (509 ईसा पूर्वकाल से 788 ई० तक) ? यह मिथ्या प्रचार तो कांची कामकोटि मठ प्रचारकों के मनगढ़न्त मानसिक पक्षपात को बल देता है। इतना ही नहीं, स्वयं सरकार की घोषणा के भी विपरीत है।* 'श्री शंकराचार्य ज्योति यात्रा' के दौरान ज्योतिरथ भिन्न–भिन्न स्थानों पर गुजरते हुए वहाँ–वहाँ के आम लोगों नें हमारा ध्यान भारत सरकार की उपर्युक्त प्रकाशिकाओं की ओर आकर्षित किया और हमसे श्री शंकराचार्य की जन्मतिथि के संदर्भ में एक 'शोध पत्र' प्रकाशित करने का अनुरोध किया। अतः समारोह समिति ने श्रीशंकराचार्य के बारहवें जन्मशताब्दी समारोह काल के संदर्भ में एक 'शोध पत्र' प्रकाशित करने का निश्चय किया है।

समारोह समिति ने वाराणसी के श्री राजगोपाल शर्मा जी से इस कार्य को क्रियान्वित करने का आग्रह किया। फलतः "आद्य श्री शंकराचार्य–आविर्भावकाल–समीक्षा व निर्णय" नामक पुस्तक पाठकों के सामने प्रस्तुत है। समारोह समिति उन्हें धन्यवाद देती है कि उन्होंने सत्य विषय को प्रकट कर बड़ा उपकार किया है। विश्वसनीय, प्रामाणिक और विवेचना से युक्त इस बहुमूल्य पुस्तक को विचारशील मानव समाज के हाथों सौंपते हुए समारोह समिति को एक क्षम्य गर्व का अनुभव हो रहा है।'श्री मज्जगद्गुरुशांकरमठ विमर्श' (700 पृष्ठ), 'काशी में कुम्भकोण मठ विषयक विवाद' (300 पृष्ठ), सत्यान्वेषण, 'व्याख्यान सिंहासन पीठ', 'कांची कामकोटि मठ–ए मिथ्' आदि पुस्तकों के लेखक श्री वाराणसी राजगोपाल शर्मा हैं। समारोह समिति उन्हें एक विद्वान होने की मान्यता देती है। उनको निस्सन्देह इस विषय का पूर्ण ज्ञान है तथा उन्होंने अपनी योग्यता से इस गरिमा को स्वयं उपार्जित किया है–उनके द्वारा लिखित व प्रकाशित

---

* श्री एस. वि. नारायण, बंगलूर, लिखते है कि आपने भारत सरकार द्वारा प्रकाशित पुस्तिका के विषय में पत्र व्यवहार द्वारा विरोध किया था और कई स्थलों से अन्यों ने भी विरोध पत्र भेजा था। भारत सरकार नें उत्तर में लिखा (D. O. NO. CO (N) /Adi/1988, 20-4-89), DAVP ने सीमित संख्या में इस पुस्तिका की प्रतिलिपि छपवायी थीऔर अब आप के पत्र के अनुसरण में आगे की सब कार्यवाही रोक दी गयी है।

श्री शंकराचार्य पर कई पुस्तकें हैं जो सभी उनके शोधकार्य पर आधारित हैं। इस पुस्तक के सम्पादक तथा प्रकाशक स्वयं अपने को पुरस्कृत समझेंगे यदि इस पुस्तक द्वारा प्रकट किया गया सत्य वृत्तान्त उन अस्पष्ट, अप्रामाणिक एवं असत्य विचारों को गलत साबित कर बुद्धि से हटा दे तथा श्री शंकराचार्य की जन्मतिथि के विषय में एक यथार्थ रुचि उत्पन्न कर दे।

समाप्ति से पूर्व, समारोह समिति सादर धन्यवाद प्रस्तुत करना चाहेगी जिन्होंने इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखी है। हम सब मुद्रक वाराणसी इलेक्ट्रानिक कलर प्रिन्टर्स प्रा० लि० के भी आभारी हैं जिन्होंने इस पुस्तक को शीघ्र छापकर सहायता की है। समारोह समिति डा० भगीरथ प्रसाद त्रिपाठी की भी आभारी है जिन्होंने इस हिन्दी भाषा–पुस्तक का आंग्ल भाषा में अनुवाद किया है।

श्री गुरुभ्यो नमः ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

'चित्तूर एस्० नारायणन् नम्बूदिरिपाद
अध्यक्ष
श्री आदि शंकर बारहवाँ जन्मशताब्दी समारोह उत्सव समिति,
श्री शृंगेरी शंकरमठ, कालटी, (केरल राज्य) (683574),

कालटी
1. 11. 1990

प्रस्तावना

'ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः'— इस अमर वाणी के साथ अद्वैत दर्शन का उद्‌घोष करने वाले आदि शंकराचार्य का चाहे जिस रूप में मूल्यांकन किया जाय, वह मानव-इतिहास में सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी, अद्‌भुत समन्वयवादी, साम्प्रदायिक एकता के अग्रदूत तथा अलौकिक जीवन-दर्शन द्वारा राष्ट्रीय-जीवन में एकरूपता लाने वाले राष्ट्रनिर्माता के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं—एक ऐसा कालजयी इतिहास-पुरुष जो न उनसे पहले कभी हुआ था और न अब संभवतः कभी होगा ही। शताब्दियों की ऐतिहासिक उथल-पुथल तथा चमत्कारी वैज्ञानिक अन्वेषण भी उनके दर्शन की सार्थकता को कम न कर सके। बुद्धिजीवियों, दार्शनिकों, वैज्ञानिकों तथा भारत के सामान्य नागरिकों के जीवन और विचारों पर आज भी उनका प्रभाव पूर्ववत् है। सच तो यह है कि समय के प्रवाह के साथ उनके विचारों का प्रभाव भारत ही नहीं, विदेशों में भी उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया है।

आचार्य शंकर के समय में भारत के समक्ष जो समस्याएँ थीं, ठीक वैसी ही समस्याओं से भारतीयों को आज भी जूझना पड़ रहा है। समाज में सदियों से प्रचलित धार्मिक रीति-रिवाजों की शालीनता एवं स्वच्छता नष्ट हो चुकी थी, आत्मानुशासन तथा आत्मोन्नति की भावना तिरोहित-सी हो चुकी थी, पूजा का प्रमुख ध्येय धनोपार्जन मात्र रह गया था, और सामाजिक मान्यताओं का क्रमिक ह्रास हो चला था। फलस्वरूप, चतुर्दिक् छल-कपट तथा द्वेष-जन्य संघर्षों का बोलबाला था।

भारतीय संस्कृति, या यों कहिए कि प्राच्य संस्कृतियों, की यह विशेषता रही है कि ऐसे संघर्षकाल में वह किसी-न-किसी ऐसे मृत्युंजयी, महान विचारक को जन्म देती है जो शाश्वत मूल्यों की तर्कपूर्ण व्याख्या कर अतीत के ऐश्वर्य को वर्तमान की गरिमा के साथ सम्बद्ध कर देता है। उन महान् मनीषियों के विचारों में ऐसी शक्ति होती है जो राष्ट्रीय मस्तिष्क को, उसकी अखण्ड एकता को बिना किसी प्रकार का आघात पहुँचाये झकझोर देती है। भगवान बुद्ध हों अथवा महावीर, लाओजे हों अथवा कन्फ्यूशियस, जरथुष्ट्र हों अथवा शंकर, सभी महाप्राणों ने सदियों से धर्म के नाम पर शोषित जीवन से हारी-थकी मानवता को जीवन का एक नया संदेश, एक नयी वाणी तथा नूतन मार्ग दिखाया और उनके अक्षय संदेश आज भी विश्व के कोने-कोने में प्रतिध्वनित हो रहे हैं और जीवन-पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा दे रहे हैं। सच तो यह है कि आचार्य शंकर ने कोई नया संदेश नहीं दिया, उन्होंने तो हिन्दू सनातनधर्म के उस परम्परागत वैभव का ही उपयोग किया जिसे उनसे पहले उपनिषद-युग में जनक तथा याज्ञवल्क्य- जैसे महान् दार्शनिकों ने किया था। उस युग का प्रधान उद्देश्य जीवन में सत्यान्वेषण था। गंभीर

साधना एवं चिन्तन के बाद उस युग का साधक सहसा अनुभव करता है। इसे हम साधारण ज्ञान द्वारा नहीं जान सकते। यह एक ऐसा रहस्य या पहेली है जिसे सर्वप्रथम दार्शनिक याज्ञवल्क्य ने अपनी दार्शनिक पत्नी मैत्रेयी के साथ सम्भाषण के सिलसिले में प्रस्तुत किया था जो कालान्तर में वेदान्त-दर्शन का मूलमंत्र बना और जिसके सबसे ओजस्वी व्याख्याकार तथा प्रचारक आचार्य शंकर हुए। उन्होंने अपने सूत्रभाष्य में परम्परागत विभिन्न परम्पराओं, पूजा के विभिन्न स्वरूपों तथा विभिन्न सिद्धान्तों को समन्वित कर हिन्दू धर्म को एक नया रूप दिया। शंकर-दर्शन का गंभीरता से अध्ययन करने पर अध्येता की जीवन शैली स्वतः परिवर्तित हो जाती है, कारण इसमें वह जीवनी शक्ति है जो मनुष्य और मनुष्य के बीच का भेद मिटा देती है, जो घृणा-द्वेष को समाप्त कर जीवन में चिरन्तन आनन्द का उद्रेक करती है। उनके अद्वैत सिद्धान्त की छाया में सभी धर्मों के लिए एक-सा स्थान है, जहाँ आपसी टकराहट नहीं, एक दूसरे के प्रति सद्भावना है।

आचार्य शंकर आज से बारह सौ वर्ष पूर्व जितने प्रासंगिक और अनिवार्य थे, आज की अलगाववादी परिस्थितियों में भी उतने ही अपेक्षित और प्रासंगिक हैं। उनका पावन चरित्र परमार्थ-पथ के पथिकों के लिए महान् संबल है। अपनी भास्वर चेतना तथा ब्रह्मज्ञान के फलस्वरूप ही उन्होंने वैदिक सनातन हिन्दू धर्म को विघटित होने से बचा लिया तथा हिन्दू धर्म में अनेक आवश्यक एवं रचनात्मक सुधार कर उसे पुष्ट नींव पर पुनरुत्थापित किया। भारत की चारों दिशाओं में आचार्य शंकर ने चार आम्नाय मठों की (पूर्व-पुरी जगन्नाथ, दक्षिण-शृंगेरी, पश्चिम-द्वारका, उत्तर-बदरिकाश्रम) संस्थापना की जिनका मुख्य लक्ष्य, वेदान्त का प्रचार और प्रसार रहा। इन चार पीठों के माध्यम से भारत में आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक सामंजस्य एवं ऐक्य संस्थापन का महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुआ। इससे आचार्य शंकर की प्रखर दूरदर्शिता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। भारत के इतिहास में उनके इस महत्वपूर्ण कार्य का अप्रतिम स्थान है। उनके अलौकिक अध्यात्म बल से ही यह दुष्कर कार्य सिद्ध हो पाया।

आज के इस उथल-पुथल और संघर्षपूर्ण युग में हम अपने धर्म के संरक्षकों तथा प्रतिष्ठापकों को भूलते जा रहे हैं। परन्तु आचार्य की पावन जीवनी, उज्ज्वल यशोगाथा एवं अलौकिक विशुद्ध कर्म भूलने की वस्तु नहीं है। उन्हें भूलना अथवा भुलाना अपने आपको भूलना होगा। आचार्य शंकर ने अपने व्यक्तित्व की अप्रतिम गरिमा से भारत का गौरव समस्त संसार की दृष्टि में बहुत ऊँचा उठाया। इसमें रंचमात्र भी संदेह नहीं कि उनके जीवन, साधना-प्रणाली और आदर्शों से भारत 'श्रेयस्' और 'प्रेयस्', आध्यात्म पक्ष और व्यवहार पक्ष के बीच सामंजस्य स्थापित कर सकता है। भारत ही नहीं, संसार के समस्त देश आचार्य शंकर के आदर्शों से प्रेरणा, स्फूर्ति और शक्ति अर्जित कर सकते हैं। आज हमारे सामने स्वराज्य की जो अवधारणा है, उसका श्रेय आचार्य शंकर को है, कारण सर्वप्रथम उन्हें ही इस बात की अनुभूति हुई कि भारत की एकता राजनीतिक सम्बन्ध पर आधारित नहीं हो सकती। भाषा, धर्म और क्षेत्र के नाम पर स्वतंत्र भारत में जो दुःखद घटनाएँ घट रही हैं उसके फलस्वरूप, स्वतंत्रता संग्राम के समय हमने जो तथाकथित राजनीतिक और आर्थिक एकता कायम की थी, वह भ्रामक सिद्ध हो रही है। आचार्य शंकर ने आध्यात्मिक तथा नैतिक मूल्यों पर आधारित सांस्कृतिक एकता का जो

मार्ग दर्शाया था, यदि आज भी ईमानदारी से हम उसका अनुसरण करें तो देश टूटने से बच सकता है। आचार्य शंकर के देहावसान से अब तक बारह सौ वर्ष बीत चुके हैं, लाखों मनुष्यों के प्रयोगों और अनुभवों के फलस्वरूप मनुष्य के ज्ञान-भण्डार में असाधारण वृद्धि हुई है, नैज्ञानिक प्रगति के अतिरिक्त उसकी दार्शनिक प्रकृतियों तथा तर्कदृष्टि में भी कल्पनातीत प्रगति हुई है, फिर भी आचार्य शंकर के उपदेशों का महत्व ज्यों का त्यों बना हुआ है और वह आज भी अंधकार में भटकते आधुनिक मानव को अपनी ज्योति से दिशा-निर्देश कर रहे हैं।

यद्यपि धर्म और संस्कृति के नाम पर आये दिन कुछ न कुछ होता ही रहता है फिर भी विगत वर्षों में भारतीयों को उच्च आध्यात्मिक स्तर पर ले जाने का कदाचित् ही कोई ठोस प्रयास किया गया है। यदि समस्त देश में फैले हुए मन्दिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों तथा गिरजाघरों को पूजा और प्रार्थना के अतिरिक्त विभिन्न सम्प्रदायों के धार्मिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा-केन्द्र बना दिया जाय तो राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता को तो बल मिलेगा ही, साथ ही धर्म की सार-वस्तु समझ लेने के बाद पारस्परिक घृणा-द्वेष का भी अंत हो जायेगा। आचार्य शंकर ने अपने अद्वैत दर्शन के माध्यम से ठीक यही कार्य किया था। उन्होंने मानवीय चेतना एवं विचार धारा को एक नयी दिशा दी, और धर्मान्धता की भर्त्सना की। आचार्य शंकर ने जो मार्ग दर्शाया है, उसका अनुसरण करने पर राष्ट्र का बहुत बड़ा कल्याण हो सकता है।

अब प्रश्न उठता है कि शंकर-दर्शन के बावजूद आज जब हम शंकराचार्य की 1200वीं जयन्ती मना रहे हैं तो यही पाते हैं कि उनके असंख्य अनुयायियों में वह परिवर्तन नहीं हो सका है जो अपेक्षित था। वास्तव में शंकर-दर्शन के अध्ययन के लिए एक विशेष प्रकार का नैतिक अनुशासन चाहिए जिसका इस युग में सर्वथा अभाव है। उसका सम्पूर्ण आनन्द लेने के लिए उनकी शिक्षाओं की तह में जाना होगा।

आश्चर्य तो यह है कि जहाँ एक ओर आचार्य शंकर की जन्म-तिथि के संबंध में विद्वानों में सहमति नहीं है, वहीं दूसरी ओर वे इस बात से पूर्ण सहमत हैं कि ये बत्तीस वर्ष की अल्पायु में ही इस लोक से चल बसे थे। इसी प्रकार शंकराचार्य द्वारा चार आम्नाय मठों की स्थापना तथा शंकराचार्य ने कहाँ समाधि ली, इस सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद है। आचार्य शंकर ने पावन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही चार आम्नाय मठों की स्थापना करायी जो वैदिक सनातन धर्मावलम्बी मुनियों की परम्परा में क्रान्तिकारी कदम था। तब से निवृत्ति परायण सनातन धर्मी मुनिगण आश्रम और मठ निर्माण कराने लग गये। यदि इन मठों में प्रशिक्षण-क्रम अक्षुण्ण रूप से चलता रहता तो भारत में अवैदिकों और विधर्मियों को पनपने का अवसर ही नहीं मिलता। पर खेद का विषय है कि ये मठाधीश अपने मठों की व्यवस्था करने में इतना अधिक तन्मय हो गये कि आचार्य शंकर के इतिहास को भी भुला दिया। इसलिए अद्यावधि आद्यशंकराचार्य का प्रादुर्भाव काल सन्दिग्ध तथा चर्चा का विषय बना हुआ है और अभी तक इस सम्बन्ध में ऐकमत्य नहीं हो पाया।

उक्त चार पीठों की परम्परा में आद्यशंकराचार्य का प्रादुर्भाव काल पृथक-पृथक बतलाया गया है। यदि किसी मान्यता के आधार पर पिछली सदियों में आद्यशंकराचार्य की शताब्दी मनायी गयी होती और इस प्रसंग को लेकर शताब्दी कीर्तिस्तम्भ आदि का निर्माण कराया होता तथा शताब्दी स्मारिका छापी होती तो आचार्य शंकर का प्रादुर्भाव-काल विवाद का विषय नहीं रह जाता। खेद का विषय है कि इन मठाधीशों ने आद्यशंकराचार्य के प्रादुर्भावकालादि ऐतिहासिक विषयों को भी विवादग्रस्त बना दिया। कुछ मठों की तो बीच-बीच में परम्परा भी उच्छिन्न होती रही है। अतः उच्छिन्न परम्पराएँ कैसे प्रामाणिक मानी जायँगी, यह एक विचारणीय विषय है। केवल दक्षिणाम्नाय शृंगेरी शारदा मठ की परम्परा ही प्रामाणिक मानी जायगी जिसमें आठवीं शताब्दी आचार्य शंकर का प्रादुर्भाव काल माना गया है। इस सम्बन्ध में आधुनिक ऐतिहासिकों की खोज भी साक्षी है। तदनुसार 788 ईस्वी आचार्य शंकर का प्रादुर्भाव काल तथा 820 ईस्वी तिरोधान काल माना गया है। इस शोधपूर्ण पुस्तक में अनेक उद्धरणों एवं प्रामाणिक विवरणों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सातवीं शताब्दी से पूर्व आचार्य शंकर का प्रादुर्भाव काल कथमपि नहीं माना जा सकता है। वस्तुतः आचार्य शंकर का कार्यकाल सातवीं शताब्दी के बाद ही सिद्ध होता है। शांकर-दर्शन के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान पं. वि. राजगोपाल शर्मा ने कठिन परिश्रम के उपरान्त प्रस्तुत पुस्तक जहाँ तक संभव हो सका है, प्रामाणिक आधार पर ही लिखी है। फलतः इस शोधपूर्ण पुस्तक का महत्व असाधारण है। इन्होंने आचार्य शंकर एवं उनके साहित्य का गंभीरता से अध्ययन किया है जिसके फलस्वरूप इनके द्वारा प्रणीत आचार्य शंकर एवं उनके द्वारा संस्थापित मठविषयक अन्य शोधपूर्ण कृतियाँ भी पठनीय एवं मननीय हैं।

हमें विश्वास है आचार्य शंकर के प्रादुर्भाव-काल सम्बन्धी इस महत्वपूर्ण पुस्तक से अनेकानेक धर्मपिपासुओं को आलोक प्राप्त होगा तथा विद्वान पाठक इस कृति से अनुप्रेरित और प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकेंगे।

शार्दूलविक्रम गुप्त
संपादक
"आज"- हिन्दी दैनिक,
सन्त कबीर रोड, वाराणसी।

प्ररोचना

भारत की सांस्कृतिक और राष्ट्रीय एकता की परिकल्पना और क्रियान्विति का श्रेय एकमात्र मध्ययुग में भगवत्पाद आचार्य शंकर को ही है। औपनिषदिक अद्वैत को भारतीय षड्दर्शनों में सर्वश्रेष्ठ सिद्धकर आचार्य ने मानवमात्र के लिए कल्याण के द्वार खोल दिये। ब्रह्मज्ञान का अधिकार किसी वर्ण या वर्गविशेष तक सीमित न रहा। वैदिक ज्ञान की भागीरथी के तट पर उन्होंने ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर, नारी और पुरुष, उच्च तथा निम्न एवं ग्राह्य तथा त्याज्य, सभी को एक साथ बैठाकर आत्मलाभ प्राप्त करने का अवसर दिया। उनसे पूर्व जैन और बौद्ध दार्शनिकों का प्रबल वर्चस्व भारतीय समाज पर स्थापित हो गया था। मीमांसा के क्षेत्र में शबर स्वामी, कुमारिलभट्ट, प्रभाकर तथा मण्डन मिश्र का एकाधिकार सर्वविदित था। यज्ञों की जटिलताएँ, सकाम अनुष्ठान, वैदिकी हिंसा तथा ईश्वर और देवतावाद पर मौन धारण के कारण मीमांसा का प्रभाव भी अनिष्टकारी प्रतीत होता था। परम्परागत वैदिक संस्कृति और सुचिन्तित ब्राह्मणवाद के विरुद्ध फैलते हुए वैचारिक आक्रोश का सबल चट्टान की तरह प्रतिरोध आचार्य शंकर ने ही किया। शांकर विचारधारा रूढियों, संकीर्णताओं और साम्प्रदायिक निष्पत्तियों से सर्वथामुक्त होने के कारण व्यक्तिहित की पोषक नहीं; वह समग्र मानवता का हितचिन्तना करती है। 7वीं शती के भारतीय वर्चस्व के सूर्य को जिन मिथ्याधार्मिक अवधारणाओं के कुहासे ने लील लिया था, आचार्य ने उन्हें प्रबल युक्तिवाद से ध्वस्त किया। धर्मसाधना, दर्शन, आचारवाद तथा हिन्दू जीवन दर्शन को नयी दिशा देकर क्षुद्र राष्ट्रीयता से भारतीय मनीषा को ऊपर उठने की प्रेरणा दी। अनेकत्व में एकत्व का दर्शन कराना ही उनका चरम लक्ष्य था। व्यष्टिभाव का लोप तथा समष्टिभाव का उदय या क्षुद्र अहंभाव का विसर्जन वेदान्त का व्यावहारिक पक्ष बना। 'अतः समं ब्रह्म एकं च तस्माद् ब्रह्मणि एव ते स्थिताः'—कहकर आचार्य ने उस समदृष्टि की स्थापना पर बल दिया जिसकी सिद्धि होने पर देश, जाति, रंग, वर्ण, भाषा तथा वैचारिक भेदों से ऊपर उठ जाता है मनुष्य। आज की अलगाववाद वादी परिस्थितियों में आचार्य के उपदेश विश्व भर के लिए प्रासंगिक हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

आचार्य शंकर के काल को लेकर इतिहासवेत्ताओं और धार्मिक आचार्यों में मतभेद बने हुए हैं। कुछ विद्वान उन्हें ईसा पूर्व ले जाने के पक्ष में हैं। इसके लिए उन्होंने सारे इतिहास की धारा को उलटने का उपक्रम किया है। धर्मकीर्ति, दिङ्नाग, वसुबन्धु, नागार्जुन आदि बौद्ध आचार्यों के इतिहाससम्मत कालक्रम को भी इन विद्वानों ने झुठलाने की चेष्टा की है। इन लोगों का कहना यह भी है कि यदि आचार्य 7वीं शती के उत्तरार्ध में हुए तो उन्हें इस्लाम की मान्यताओं का परमत खण्डन प्रसंग में खण्डन करना चाहिए

था; क्योंकि इस्लाम का आगमन सातवीं सदी के त्रावणकोर में आये मुसलमान व्यापारियों के माध्यम से हो गया था। सुनने में युक्ति अकाट्य प्रतीत होती है पर विचार करने पर इसकी निस्सारता भी सामने आ जाती है।

आचार्यश्री की एक रचना है 'उपदेश साहस्री'। इसकी प्रामाणिकता इस बात से सिद्ध है कि सुरेश्वराचार्य जी ने अपने वार्तिक में इसके कई श्लोक उद्धृत किये हैं। इसी 'उपदेश साहस्री' में आचार्य ने धर्मकीर्ति का एक श्लोक उद्धृत किया है—"अभिन्नोऽपि हि बुद्ध्यात्मा विपर्यासितदर्शनैः। ग्राह्य ग्राहक संवित्तिभेदवानिव लक्ष्यते ॥" यही श्लोक बृहदारण्य वार्तिक में भी पूर्व पक्ष के रूप में उद्धृत है। इसकी टीका करते हुए आनंदगिरि ने इसे कीर्तिवाक्य कहा है। 'कीर्ति' धर्मकीर्ति का संक्षिप्त नाम है। इसी तरह 'सहोपलम्भ-नियमादभेदो' श्लोक भी धर्मकीर्ति का है जो ब्रह्मसूत्र में आचार्य ने उपबृंहित कर प्रस्तुत किया है। इससे निश्चय होता है कि धर्मकीर्ति के बाद शंकर का प्रादुर्भाव हुआ। धर्मकीर्ति हर्ष के समकालीन थे, उन्हीं के सम्पर्क से महाराज हर्ष के जीवन में त्याग और ज्ञान का उदय हुआ। 'नागानन्द' नामक नाटक श्रीहर्ष ने धर्मकीर्ति के प्रभावापन्न होकर ही लिखा। साँप जैसे क्षुद्र कुटिल स्वभाव के प्राणी के लिए राजकुमार जीमूतवाहन का गरुड़ के सामने प्राणार्पण कर देना बौद्ध करुणावाद का ही उज्ज्वल प्रतिफलन कहा जा सकता है। 'हतं सत्यं सत्यं व्रजतु क्वाद्य करुणा' बौद्ध सत्य और अहिंसा सिद्धान्त की छाया मात्र है। हर्ष का समय क्योंकि 590 ई० से 647 ई० का है, अतः धर्मकीर्ति को इस काल से पूर्व नहीं ले जा सकते। यही नहीं, हर्ष के समय में आनेवाले चीनी यात्री ईत्सिंग ने अपने भ्रमणवृत्तान्त में उद्भट बौद्ध दार्शनिक धर्मकीर्ति का उल्लेख किया है। ईत्सिंग नालन्दा में शिक्षा ग्रहण करने आया था, वह छह मास तक सुमात्रा में रुका था, और वहाँ उसने संस्कृत व्याकरण का अध्ययन किया था। ईत्सिंग का समय 673 ई० से 695 ई० है, अतः सातवीं शती से पूर्व धर्मकीर्ति को नहीं ले जाया जा सकता। इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के रहते धर्मकीर्ति का खण्डन करनेवाले आचार्य 7वीं शती के पूर्व कैसे उद्भावित किये जा सकते हैं ?

अब रही आचार्य की इस्लाम विषयक उपेक्षा की बात। वस्तुतः इस्लाम के आगमन से पूर्व भारत में हिन्दू वर्णाश्रम धर्म विरोधी इस्लाम जैसे ही उपासना प्रधान वज्रयानी, लोकायत, वीरशैव, नीलपट, तांत्रिक वाममार्गी तथा निरंजन जैसे अनेक सम्प्रदाय थे जो वेदविरुद्ध थे तथा श्रुति-स्मृति के विरोध में सामाजिक क्रान्ति के लिए अग्रसर थे। आचार्य ने जब इनका उच्छेद किया तब इस्लाम किसी ठोस दर्शन के साथ हिन्दुस्तान में नहीं आया था। कुरान में कोई पुष्ट दार्शनिक विचारधारा नहीं है। ईश्वर, जीव, सृष्टि तथा तीनों के सम्बन्ध पर कुरान मौन है। उसमें एकेश्वरवाद, ईश्वर की सृष्टि रचना तथा कलमा, नमाज़, रोज़ा, ज़कात तथा हज़ जैसे पाँच धार्मिक कृत्यों का उल्लेख है, जो इस्लाम को एक मत या संगठन मात्र सिद्ध करते हैं। इस्लाम में अद्वैतवादी भावना का प्रवेश अल्लाफ़ अबुल हुजैल (845 ई०) के मोतजला सम्प्रदाय से हुआ। सूफीमत का यह उत्थान फारस में हुआ जहाँ अरब सौदागर शंकर के अद्वैत की मूलभावना 'अहं ब्रह्मास्मि' को 'अनल हक़' के रूप में ले गये। वहाँ उपासनापरक वेदान्त का जन्म हुआ जो सूफियों के साथ पुनः लौटकर कबीर की निर्गुणधारा में अन्तर्भुक्त हुआ। इस्लाम

में यतिवृति का प्रवेश मोतजला का ही प्रभाव है। 'अलगज़ाली' इसके प्रमुख आचार्य हुए। इनका समय 1051 ई० से 1112 ई० तक का कहा जाता है। मंसूर अल हल्लाज़ 922 ई० में इसी का उद्घोष करते हुए फाँसी पर चढ़े। कहना यह कि आचार्य शंकर के दो सौ वर्षों बाद सूफी अद्वैत की धारा में आये। अन्यथा इस्लाम जब आक्रान्ता के रूप में सिंध में घुसा था, तभी कोई शंकर जैसा दार्शनिक साथ लेकर आता। इस्लाम तब तक दर्शनशून्य था, फिर यह प्रश्न क्यों उठाया जा रहा है कि शंकर ने इस्लाम के दर्शन का खण्डन क्यों नहीं किया। कुछ खण्डन करने योग्य उन तक पहुँचा होता तो खण्डन होता। उन्होंने यवन दार्शनिकों का ही खण्डन कहाँ किया है ? यूनानी दार्शनिकों की छाया तो शंकर से पूर्व ज्योतिष के साथ इस देश में आ चुकी थी। इसका कारण यही था कि भारत में आकर बसनेवाले अभारतीय शासकों ने स्वयं को भारतीय संस्कृति में विलयित कर दिया था। वे अपने गुण-कर्मानुसार भारतीय धारा में विलीन हो गये थे। यूनानी तथा शक क्षत्रपों के बारें में यही कहा जा सकता है। इन सबकी विचारधाराओं का समावेश बौद्ध दार्शनिक प्रस्थानों में हुआ। आचार्य ने इसीलिए बौद्ध दार्शनिकों का खण्डन कर सभी अवैदिक मतों के पूर्वापर पक्षों को निरस्त कर दिया। औपनिषदिक रहस्यवाद, सर्वात्मवाद, जगन्मिथ्यावाद तथा जीवब्रह्म एकतावाद की धारणा प्रस्तुत कर आचार्य ने मध्यकालीन चिन्तन को परम्परोन्मुखी बनाया। डॉ० ताहा हुसैन केरो भी मानते हैं कि इस्लाम में बौद्धिक दार्शनिक मतवाद का उन्मेष भारतीय प्रभाव के कारण हुआ। भारतीय अद्वैत भारत से अरब, अरब से ईरान और ईरान से बाहर भारतीय पण्डितों के कारण ही पहुँचा। तात्पर्य यह कि आचार्य के सामने इस्लाम का कोई विचारोत्तेजक मौलिक दर्शन नहीं था, जिसका खण्डन करना वह आवश्यक समझते तथा न ही वह इस्लाम के एकेश्वरवाद से प्रभावित होकर अद्वैतदर्शन की उद्भावना में प्रवृत्त हुए जैसा कि डॉ० ताराचंद जैसे इतिहासकार मानते हैं। स्पष्ट ही आचार्य को सातवीं शती से पूर्ववर्ती माननेवालों के तर्क निराधार और मिथ्या हैं।

मुझे यह देखकर परम प्रसन्नता हो रही है कि शांकर साहित्य, दर्शन और इतिहास के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान पण्डित वी. राजगोपाल शर्मा ने "आद्य श्रीशंकराचार्य-आविर्भाव काल" पुस्तक लिखकर आचार्य का आविर्भाव काल 788 ई० प्रमाणित कर दिया है। श्रीशर्मा के "श्रीमज्जगद्गुरु शांकर मठ विमर्श" ग्रन्थ की प्रशंसा डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, डॉ० राधाकृष्णन, डॉ० मंगलदेव शास्त्री तथा डॉ० सम्पूर्णानन्द जैसे मनीषियों ने की है। इससे स्पष्ट होता है कि वह शांकर साहित्य और इतिहास के विश्रुत विद्वान हैं। प्रस्तुत कृति में आन्तरिक और बाह्य प्रमाण के रूप में श्रीशर्मा ने अनेक स्रोतों का दोहन किया है। तथ्याश्रित और तत्वाश्रित आलोचना की सरणि अपनाकर लेखक ने विमर्श का एक संतुलित आयाम प्रस्तुत किया है। अप्रामाणिक, लोककथासिद्ध, अदृष्ट तथा इतिहास विरुद्ध जल्पनाओं का साधार खण्डन कर लेखक ने पुष्ट प्रमाणों के परिप्रेक्ष्य में अद्यतन उपलब्ध सामग्री की परीक्षा की है। उनमें न तो साम्प्रदायिक दुराग्रह है और न स्वकीय मन्तव्यों की पक्षधरता। सत्यान्वेषण की दृष्टि से संवलित पूर्ण तटस्थ और निरपेक्ष भाव से उन्होंने आचार्य के आविर्भाव काल पर विचार किया है। उनके इस निष्कर्ष से—'भारतीय दर्शन शास्त्र के संशोधकों के अनुसन्धानों के अनुसार यह निश्चित माना गया है कि

भाष्यकर्ता आचार्य शंकर का जन्मकाल 788 ई० है। यह भी सिद्ध किया गया है कि आचार्य शंकर ने चार वेदों के लिए चार दृष्टिगोचर दिशाओं में चतुर्धाम व उनके समीप में चार आम्नाय मठों की स्थापना की, कश्मीर स्थित शार्दी में सर्वज्ञपीठ पर आरोहण भी किया था तथा हिमालय के केदारक्षेत्र में शरीर त्याग किया था'—से पूर्ण सहमत हूँ। शृंगेरी की परम्पराप्राप्त तिथि और वर्ष सर्वथा प्रमाण हैं। महामण्डलेश्वर श्री स्वामी काशिकानन्द जी भी इसी तिथि के समर्थक हैं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस पुस्तक के प्रकाशन के बाद विद्वानों में अनिश्चय और दुराग्रह समाप्त हो जायगा तथा आचार्य की आविर्भाव तिथि पर एकमत की स्थापना हो सकेगी। श्री शर्मा ने अत्यन्त अध्यवसाय, मर्मज्ञता तथा विदग्धतापूर्वक ऐतिहासिक तथ्यों और साहित्य-बिन्दुओं का उद्‌घाटन कर निष्कर्ष निकाले हैं। अनुसन्धानगत तटस्थता को उन्होंने कहीं भी ओझल नहीं होने दिया। आशा है, विद्वान इस कृति का समादर करेंगे तथा तिथिविषयक विवाद को समाप्तप्राय समझेंगे।

पौष पूर्णिमा 2047 वि.
31.12.1990

डॉ० विष्णु दत्त राकेश, डी० लिट्०
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
निदेशक
स्वामी श्रद्धानंद अनुसन्धान प्रकाशन केन्द्र
गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उ० प्र०)।

[परिचय : पण्डित प्रवर आचार्य श्री विष्णुदत्त राकेश जी (पीएच. डी., डी. लिट्.) ख्यातिप्राप्त विद्वानों में एक गिने जाते हैं और आपकी विद्वत्ता साहित्य, इतिहास एवं शास्त्रों में अपार है। श्रीविद्या उपासक भी हैं। आपने अब तक छोटी-बड़ी 18 पुस्तकें प्रकाशित की हैं जिनमें प्रमुख हैं—साहित्य की भारतीय संवेदना, उत्तरभारत के निर्गुण पंथ साहित्य का इतिहास, रीतिकाल के ध्वनिवादी हिन्दी आचार्यों का तुलनात्मक अध्ययन, पंत का सत्यकाम, वेदों के राजनीतिक सिद्धान्तः मेरी दृष्टि में, दश महाविद्या मीमांसा, मार्कण्डेय पुराण, वैदिक साहित्य, संस्कृति और समाजदर्शन, हिन्दी शब्दशास्त्र और आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, आचार्य श्री चन्द्र : साधना, सिद्धान्त और साहित्य तथा भारतीय अस्मिता और राष्ट्रीय चेतना के आधार जगद्‌गुरु आद्य शंकराचार्य (सम्पादित) ।]

शुभाशंसा

ओमिति दिविसत् प्रवराः शीर्षे कुर्वन्ति शासनं यस्य ।
ओंकार पद्मभृङ्गं तमहं प्रणमामि शङ्कराचार्यम् ।।

परमहंस परिव्राजकाचार्य आद्य शङ्कराचार्य भारतवर्ष की एक दिव्य विभूति थे । उनकी प्रभा आज भी दिग् दिगन्त को आलोकित कर रही है। उनकी कीर्ति-कौमुदी आज भी भारत के नभोमण्डल को अपने अक्षुण्ण रूप में उद्भासित कर रही है। वैदिक धर्म के इतिहास में आचार्य शंकर का आविर्भाव एक नवीन युग के अवतरण का सूचक है। जब यह पवित्र भारतवर्ष अवैदिकता के पंक में धँसा जा रहा था, जब अनाचार और कदाचार के काले-काले राक्षस इसे चारों ओर से घेरे हुए थे, जब एक छोर से दूसरे छोर तक यह सारा देश आलस्य और अकर्मण्यता के चंगुल में फँसा हुआ था, तब आचार्य शंकर का मंगलमय उदय इस देश में हुआ। धार्मिकता की जो ज्योति दम्भ की आँधी के सामने बुझने के किनारे आकर अन्तिम घड़ियाँ गिन रही थी उसे इन्होंने बुझने से बचाया, जिससे देशभर में धर्म की स्निग्ध आभा फैल गयी। वैदिक धर्म का शंखनाद ऊँचे स्वर से सर्वत्र होने लगा; उपनिषदों की दिव्यवाणी देशभर में गूँजने लगी; गीता का ज्ञान अपने विशुद्ध रूप में जनता के सामने आया; धार्मिक आलस्य का युग बीता। धार्मिक उत्साह से देश का वायुमण्डल व्याप्त हो गया। नवीन युग का आरम्भ हुआ। यह युगान्तर उपस्थित करने वाले धर्मप्रतिष्ठापक श्री आचार्य शंकर किस भारतीय के लिए वन्दनीय नहीं हैं ? इस विशाल भारतवर्ष को एकता, अखण्डता तथा धार्मिकता के द्वारा समस्त विश्व में पूरी पहिचान देने वाले शंकराचार्य की पाण्डित्य की गरिमा एवं कर्मठता की महिमा आज भी हमारे लिए एक महनीय धरोहर है—कमनीय उपलब्धि है।

इन्हीं आचार्य शंकर के आविर्भाव काल के निर्णय के लिए काशी के मनीषी अद्वैती विद्वान पण्डित राजगोपाल शर्मा का यह "आद्य श्रीशङ्कराचार्य-आविर्भाव काल (समीक्षा व निर्णय)" नामक ग्रन्थ सर्वथा श्लाघनीय अभिनव प्रयास है। इस निर्णय के निमित्त अनेक विद्वानों ने पहिले भी उद्योग किया है और आज भी कर रहे हैं। परन्तु शर्माजी के प्रयास में गम्भीरता तथा व्यापकता दोनों है। ऐसा विशाल प्रमेयबहुल प्रमाणपुरःसर चिन्तन इसके पूर्व असम्भव ही था। इसके लिए पण्डितजी के शास्त्रीय एवं ऐतिहासिक अनुसन्धानों की जितनी प्रशंसा की जाय, वह थोड़ी ही होगी। शंकराचार्य का आविर्भाव काल शास्त्रीय विचारों के खण्डन-मण्डन का युग था। वैदिक धर्म, जैन धर्म और बौद्ध धर्म—इन तीनों धर्मों के मनीषी अपने-अपने धर्मों के सिद्धान्तों की प्रभूत उपादेयता तथा एकान्तसत्यता के निमित्त अपने दार्शनिक सिद्धान्तों के मण्डन तथा दूसरे धर्म के तथ्यों के खण्डन के लिए बद्धपरिकर दृष्टिगोचर होते हैं। अतएव अपने ग्रन्थों में दूसरे मतावलम्बी के ग्रन्थ

का नाम तथा सिद्धान्त का निर्देश करने में वे सर्वथा अग्रसर रहते थे। इस विचारधारा के कारण उनका समय निरूपण भली भाँति किया जा सकता है। पण्डित राजगोपाल जी ने इस कार्य के लिए गम्भीर तथा विविध अनुसन्धान किया है। उस युग के आचार्य-भर्तृहरि, कुमारिल भट्ट, दिङ्नाग तथा धर्मकीर्ति एवं अकलंक के ग्रन्थों में भिन्न प्रस्थान के विद्वानों के मतों का खण्डन, ग्रन्थों के तथ्यों का उल्लेख आदि बहुशः पाया जाता है। इन आचार्यों के ग्रन्थों के विश्लेषण के आधार पर इनके आविर्भाव काल के पौर्वापर्य का विचार पहिले भी शोधकर्ता विद्वानों ने किया है, परन्तु उनके तारतम्य विषय में पण्डित राजगोपाल शर्मा जी का कार्य विशेष उल्लेखनीय रहेगा। कारण यह है कि इन्होंने विषय की गम्भीर गवेषणा तथा अन्तरंग परीक्षण इस नवीन ग्रन्थ में किया है। डॉ० के. बी. पाठक ने धर्मकीर्ति एवं शंकराचार्य, भर्तृहरि और कुमारिल, तथा दिगम्बर जैन साहित्य में कुमारिल का स्थान—इन तीनों विषयों पर पाण्डित्यपूर्ण अनुसन्धानात्मक लेख प्रकाशित किये हैं। मैंने भी आज से चालीस साल पहिले 1950 ई० में 'श्री शङ्कराचार्य' नामक ग्रन्थ में आचार्य शङ्कर को धर्मकीर्ति से पश्चाद्वर्ती तथा भामतीकार वाचस्पति मिश्र से पूर्ववर्ती सिद्धकर उनका आविर्भाव काल अष्टमशती का अन्तिम चरण प्रमाणपुरःसर सिद्ध किया है। परन्तु पण्डित राजगोपाल शर्मा जी के ऐतिहासिक अनुसन्धान की पद्धति अत्यन्त श्लाघनीय है। उन्होंने विषय के अन्तस्तल में प्रवेश कर तर्क तथा युक्तियों के सहारे आचार्य शंकर के आविर्भाव काल का जो निर्णय किया है, वह सर्वथा सत्य, अकाट्य तथा अपरिवर्तनीय है।

इस लघुकाय ग्रन्थ में अनेक तथ्य एकदम नूतन तथा सर्वथा माननीय हैं। 'सर्वज्ञपीठ' के विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। अनेक विद्वान काश्मीर के केन्द्रस्थल श्रीनगर में 'शंकराचार्य मन्दिर' नाम से ख्यात स्थल को ही 'सर्वज्ञपीठ' मानते हैं, परन्तु शर्माजी ने इसे भ्रान्त माना है और वे 'शार्दी' नामक स्थान को जो काश्मीर के बिल्कुल उत्तर में है तथा आजकल यह भूसीमा सम्भवतः पाकिस्तान के शासन के अन्तर्गत है, सर्वज्ञपीठ मानते हैं। इसका निर्देश उन्होंने इस ग्रंथ में किया है (पृष्ठ-6)।

शर्माजी ने आद्य शंकराचार्य के प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा भगवद्गीता) भाष्यों का खूब मनन किया है तथा आचार्य से पूर्वकाल में होनेवाले विद्वानों के नाम, धाम तथा कार्य का पूर्णतया उल्लेख किया है। इसी कारण इस ग्रन्थ में विस्तार के साथ गाम्भीर्य है। तथ्य तो यह है पण्डित राजगोपालजी ने अपना जीवन ही शङ्कराचार्य विषयक चिन्तन तथा मनन के लिए समर्पित कर दिया है। आपके आदरणीय पिताजी का भी पाण्डित्य तथा समर्पण इसी प्रकार का था। शर्माजी अंग्रेजी भाषा के मर्मज्ञ विद्वान हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति, धर्म एवं दर्शन के विषय में पश्चिमी विद्वानों के ग्रन्थों का भी अध्ययन किया है और इसलिए श्रीशंकराचार्य एवं वेदान्त तत्वों के प्रभाव के विषय में पाश्चात्य विद्वानों के विचारों को उन्होंने संक्षेप में दिखलाने का प्रयत्न किया है (देखिये इस ग्रन्थ के चार पृष्ठ (झ), (ञ), (ट) तथा (ठ)। इन विचारों का संकलन इन्होंने बड़ी सूक्ष्मता से किया है। ये अद्वैत तत्व को खूब स्वयं समझते हैं और पाश्चात्य दार्शनिकों के विचारसंग्रह में ये सर्वथा निपुण हैं। अतः काशी के इस मनीषी विद्वान का यह कार्य सर्वथा स्तुत्य तथा आदरणीय है। हमारी अभिलाषा है कि पण्डित राजगोपाल शर्माजी

इसी प्रकार अन्य प्रकार की वैचारिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर भारतीय धर्म एवं दर्शन की अपूर्व सेवा करते रहेंगे। तथास्तु।

वाराणसी
वसन्त पंचमी
वि. सं. 2047
20. 1. 1991

बलदेव उपाध्याय

[परिचय : 'पद्मभूषण' पण्डितप्रवर, आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय जी (एम. ए., साहित्याचार्य) काशीधाम के प्रकाण्ड विद्वानों में प्रमुख हैं। आपकी विद्वत्ता पूर्व तथा पाश्चात्य दर्शनशास्त्रों में अपार है। आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय (B. H. U.) में प्रोफेसर थे, पश्चात् वाराणसेय संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में प्रोफेसर तथा संचालक, रिसर्च इंस्टीट्यूट, पदों पर नियुक्त हुए। 1989-90 ई० में भारत सरकार ने "पद्मभूषण" सम्मान से विभूषित किया। आपके रचित ग्रन्थ अनेक हैं, जिनमें प्रमुख हैं : आर्यसंस्कृति, वैदिक साहित्य और संस्कृति, भारतीय दर्शन, संस्कृत साहित्य का इतिहास, व्रत चन्द्रिका, निबन्ध चन्द्रिका, वैदिक कहानियाँ, बौद्ध दर्शन मीमांसा, भागवत संप्रदाय, शङ्कराचार्य, आचार्य सायण और माधव, भारतीय साहित्य शास्त्र, काव्यानुशीलन, संस्कृत आलोचना, माधवीय शंकरदिग्विजय का हिन्दी भाषा अनुवाद, काशी की पाण्डित्य परम्परा, आदि।]

श्री गुरुभ्यो नमः

'येषा शङ्करभारती विजयते निर्वाण सन्दायिनी।'

'शंभोर्मूर्तिश्चरति भुवने शङ्कराचार्य रूपा।'

आद्य श्री शंकराचार्य स्तुति

(क) शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम्।
भाष्यसूत्र कृतौ वन्दौ भगवन्तौ पुनः पुनः ॥
श्रुतिस्मृतिपुराणानां आलयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पाद शंकरं लोक शंकरम् ॥
दुष्टाचारविनाशाय प्रादुर्भूतो महीतले।
स एव शंकराचार्यः साक्षात् कैवल्यनायकः ॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परंब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

(ख) यद्वक्त्रमानससरः प्रतिलब्धजन्म
भाष्यारविन्दमकरन्दरसं पिबन्ति।
प्रत्याशमुन्मुख विनीत विनेय भृङ्गाः
तान्भाष्य वित्तकगुरून् प्रणतोऽस्मिमूर्ध्ना ॥
नमाम्यभोगि परिवार सम्पदं निरस्तभूति मनुमार्ध विग्रहम्।
अनुग्रमुन्मृदितकाललाञ्छनं विना विनायकमपूर्व शंकरम् ॥—श्रीपद्मपादाचार्य

(ग) आशैलादुदयात् तथाऽस्तगिरितोभास्वद्यशोरश्मिभिः।

व्याप्तं विश्वमनन्धकारमभवद्यस्यस्म शिष्यैरिदम् ॥
आरात ज्ञानगभिस्तिभिः प्रतिहतश्चन्द्रायते भास्करः ।
तस्मै शंकरभानवे तनुमनोवाग्भिर्नमः स्यात् सदा ॥
वेदान्तोदरवर्तिभास्वदमलं ध्वान्ताच्छिदस्मद्धियो ।
दिव्यज्ञानमतीन्द्रियेऽपि विषये व्याहन्यते न क्वचित् ॥
यो नो न्यायशलाकयैव निखिलं संसारबीजं तमः ।
प्रोत्सार्याविरकार्षीत् गुरुगुरुः पूज्याय तस्मै नमः ॥ —श्री सुरेश्वराचार्य

(घ) यशांधीसूर्यदीप्त्या प्रतिहतमगमन्नाशमेकान्ततो मे
ध्वान्तं स्वान्तस्य हेतुर्जननमरणसन्तानदोलाधिरूढ़ेः ।
येषां पादौ प्रपन्नाः श्रुतिशमविनयैः भूषिता शिष्यसंघाः
सद्योमुक्ताः स्थितास्तान् यतिवरमहितान् यावदायुर्नमामि ॥ —श्री तोटकाचार्य

(ङ) आचार्यकृतिनिवेशनमप्यवधूतं वचोऽस्मदादीनाम् ।
रथ्योदिकमिव गङ्गाप्रवाहपातः पवित्रयति ॥
नत्वा विशुद्ध विज्ञानं शंकरं करुणाकरं ।
भाष्यं प्रसन्नगम्भीरं तत्प्रणीतं विभज्यते ॥ —श्री वाचस्पति मिश्र

(च) वक्तारमासाद्य यमेव नित्या, सरस्वतीस्वार्थसमन्विताऽऽसीत् ।
निरस्तदुस्तर्ककलङ्कपङ्का, नमामि तं शंकरमर्चिताङ्घ्रिम् ॥ —श्री सर्वज्ञात्मन्

(छ) अज्ञानान्तर्गहनपतितानात्मविद्योपदेशै—
स्त्रातुं लोकान् भवदव शिखाताप पापच्यमानान् ।
मुक्त्या मौनं वटविटपिनो मूलतो निःसरन्ती
शंभोर्मूर्तिश्चरति भुवने शंकराचार्यरूपा ॥ —श्री विद्यारण्य

(ज) अद्वैतामृतवर्षिभिः परगुरुव्याहारधाराधरैः
कान्तैर्हन्त समन्ततः प्रसृमैररुत्कृत्ततापत्रयैः ।
दुर्भिक्षं स्वपरैकता फलगतं दुर्भिक्षु सम्पादितं
शान्तं सम्प्रति खण्डिताश्च निविडाः पाखण्डचण्डातपाः ॥
वादिव्रातगजेन्द्रदुर्मदघटा दुर्गर्व संकर्षणः
श्रीमच्छंकरदेशिकेन्द्र मृगराडायाति सर्वार्थवित् ।
दूरं गच्छतवादि दुःशठगजाः संन्यास दंष्ट्रायुधो
वेदान्तोरुवनाश्रयस्तदपरं द्वैतं वनं भक्षति ॥ —श्री माधवाचार्य

(झ) वेदान्तार्थतदाभास—क्षीरनीरविवेकिनम् ।
नमामि भगवत्पादं परमहंस धुरन्धरम् ॥ —श्री अमलानन्द स्वामी

(ञ) नानाभाष्यादृता सा सगुणफलगतिर्वैद्यविद्या विशेषैः
तत्तद्देशापिरम्या सरिदिव सकला यत्रयात्यंशभूयम् ।
तस्मिन्नानन्द सिन्धावति महति फले भाव विश्रान्तिमुद्रा
शास्त्रस्योद्धारिता यैः प्रणमत हृदितान्नित्यमाचार्य पादान् ॥ —श्री अप्पय्य दीक्षित

श्री शंकराचार्य एवं वेदान्त तत्वों का प्रभाव
पाश्चात्य विद्वानों के विचार

1. Will Durant— 'In his short life of thirtytwo years, Shankara achieved that union of sage and saint, of wisdom and kindliness, which characterizes the loftiest type of man produced in India..... It seemed to him that the profoundest religion and the profoundest philosophy were those of the Upanishads..... Like Aquinas, Shankara accepts the full authority of his country's Scriptures as a divine revelation and then sallies forth to find proofs in experience and reason for all scriptural teachings. Unlike Aquinas, however, he does not believe that reason alone can suffice for such a task, on the contrary he wonders have we not exaggerated the power and the role, the clarity and reliability of reason..... It is not logic we need, says Shankara, it is insights, the faculty (akin to art) of grasping at once the essential out of the irrelevant, the eternal out of temporal, the whole out of the part..... To Shankara the existence of God is not a problem, for he defines God as Existence and identifies all real being with God..... Brahaman is the cause and effect, the timeless and secret essence of the world. The goal of philosophy is to find that secret and to loose the seeker in the secret found..... It was a subtle and profound philosophy to be written by a lad in his twenties. Shankara not only elaborated it in writing but defended it successfully in debate.'

2. Lowes Dickinson— '.....The real antithesis in the world of philosophy is not between Indian philosophy and European philosophy, but between Shankara's Advaita on the one hand and all other systems of philosophy on the other.'

3. Margaret Noble (Sister Nivedita)— '.....Western people, can hardly imagine a personality like that of Shankaracharya. We contemplate with wonder and delight the devotion of Francis of Assisi, the intellect of Abelard, the virile force and freedom of Martin Luther and the political efficiency of Ignatius Loyala, but who could imagine all those united in one person.'

4. Arthur Isenberg— 'Advaita Vedanta of Shankara provides a complete philosophical and conceptual frame work within which the findings of advanced modern physical science can be placed without stress or tear. Monoism seemed unattractive as long as scientists had to believe in the separate natures of matter and energy. But now that matter and energy have been proved to be equivalent aspects of one underlying something, the appeal of monoism has become far greater, if not indeed irresistable'..... 'I have come to admire the system known as Advaita Vedanta and the lonely spiritual giant who has given it a cohesion and clarity unknown to most, if not all other philosophical systems..... The thought structure developed by men like Sri Shankara was fully capable of accommodating the perplexing new insights of the men science of the

west. Viewed as a whole, Shankara's philosophy constitutes a completely uncompromising monoism. True, Advaita Vedanta is earlier than Shankara. His genious showed itself in the incisive manner in which He provided logical consistency and cohesion for the concepts and propositions formulated by His predecessors. Shankara's philosophy is assuredly worth studying; the appeal of which became far greater with Einstein's discovery that matter and energy are interchangeable.... We must realise that Shankara must for ever be— numbered among the wisest sons, not of mother India alone, but of all mankind.'

5. Charles Johnston— What shall we say, then of the Master Shankara? Is he not the guardian of the sacred waters, who by his commentaries, has hemmed about, against all impurities of Time's jealousy, first the mountain tarns of the Upanishads, then the serene forest lake of the Bhagavadgita, and last the deep reservoir of the Sutras, adding from the generous riches of his wisdom, lively fountains and lake-lets of his own, the crest jewel, the Awakening and Discernment.'

6. Dr. Thibaut— We are quite ready to admit that Shankara's system is most probably the best that can be devised. We must admit without hesitation that Shankara's doctrine faithfully represents the prevailing teachings of the Upanishads in one point at least, viz. that the soul or self of the sage, whatever its original relation to Brahman may be, is in the end completely merged and undistinguishably lost in the universal self. The doctrine advocated by Shankara is, from a purely philosophical point of view and apart from all theological considerations, the most important and interesting one which has arisen on Indian soil, neither those forms of the Vedanta which diverge from the view represented by Shankara, nor any of the non-Vedantic systems can be compared with the so called orthodox Vedanta in boldness, depth and subtlety of speculation.

7. Sir John Woodroffe— '.....Others have written commentaries and books on Vedanta Sutras and the Upanishads, but there is none who is venerated as Shankara is all over the sacred land..... the Prapanchasara is the first book of its kind and has shown that all the different forms of Sadhana which in these days go under the general name of Hinduism are in harmony with Vedanta and that all Mantras are meant for the realisation of the Supreme Brahman.'

8. Rev. J. F. Pessein— 'Great credit is due to Shankara and his school for having fought strenuously against the upholders of self-existence of the material world and brought the whole universe under the sway of God to whom it owes not only its organisation but also its very being. Shankara understood that the independent existence of another being would imply limitation of God'.

9. Dr. Paul Deussen— The system of the Vedanta, as founded on the Upanishads and Vedanta Sutras and accompanied by Shankara's commentaries on them— equal in rank to Plato and Kant— is one of the most valuable products of genious of mankind in his researches of the eternal truth.... philosophical conceptions unequalled in India or perhaps anywhere else in the world..... Eternal philosophical truth has seldom

found more decisive and striking expression than in the doctrine of the emancipating knowledge of the Atma.'

10. Rene Guenon— 'Shankaracharya has deduced and developed more completely the essential contents of the Upanishads. His authority can only by questioned by those who are ignorant of the true spirit of the orthodox Hindu tradition and whose opinion is consequently valueless. In a general way, therefore, it is his commentary that we shall follow in preference to others.'

11. Schopenhauer— 'In the whole world, there is no study so beneficial and so elevating as that of the Upanishads. It has been the solace of my life. It will be the solace of my death..... They are a product of the highest wisdom..... It is destined sooner or later to become the faith of the people. In India our religion will now and never strike root. The primitive wisdom of the human race will never be pushed aside by the events of Galilee. On the contrary, Indian wisdom will flow back upon Europe and produce a thorough change in our knowing and thinking.... Almost Super human conceptions whose originators can hardly be said to be mere men.'

12. Dr. Goldstuker— '...The Vedanta is the sublimest machinery set into motion by Oriental thought.'

13. Prof. Max Mueller— 'The Upanishads are the.... sources of.... the Vedạnta philosophy. A system in which human speculation seems to me to have reached its very acme.If these words of Schopenhauer required any confirmation, I would willingly give it as a result of my life-long study'..... 'None of our philosophers has ventured to erect such a spire, never frightened by storms and lightnings, like Shankara.'

14. Victor Cousins— 'When we reach the poetical and philosophical monụments of the East, above all those of India, we discover there many truths so profound and which make such a contrast with the results at which the European genius has sometimes stopped that we are constrained to bend the knee before the philosophy of the East.'

15. Romain Rolland— 'The only religion that can have any hold on the intellectual people is the rationalistic religion of Advaita.'

16. Sarra Bull— 'Even the loftiest philosophy of the Europeans appears in comparison with the abundant light of oriental idealism like a feeble Promethean spark in the full flood of the heavenly glory of the noon-day sun-faltering and feable and even ready to be extinguished.... The German schools, the English orientalists and our own Emerson testify the fact that it is literally true that Vedantic thoughts pervade the western thought of today.'

17. Yati Nitya Chaitanya— '.....Shankara was the absolutist philosopher of India. His methodology does not depend on theological presuppositions. It matches, if not excels, the methodology of any western philosopher in its metaphysical certitude. To doubt all presuppositions, he was more dispassionate than Descartes. To question the validity of emperical notions, he excẹlled David Hume. In his critical enquiries he

was more accurate than Immanuel Kant. In employing dialectics he was more clear than Hegal. In intuition, he could soar higher than Bergson.'

18. Sir Charles Eliot— '.....in consistency, thoroughness and profoundity, holds the place in Indian philosophy.'

19. Dr. William James— '.....any body with an ear to monoistic muse will get elevated and reassured.'.

20. Warren Hastings— '....The British empire will disappear from India. The song of the Veda, the Bhagavadgita, will live for ever.'

21. Andrew Malreaux— 'The future of the world is tied with future of the Indian thought.'

22. Wendell Thomas— 'Shankara's conception of God is needed to help express the full meaning of Jesus..... Perhaps it is not too bold to prophecy that the war-torn west will never find peace or cultural unity, until it studies in a thorough going fashion a philosophy such as Shankara's.'

23. E.W.F. Tomlin— 'With Shankara we have to do with a philosopher of very different calibre; in fact we have with one of the greatest of all philosophers, whose work ought to be better known in the occident than it is.'

24. Col. Jacob— 'It may be admitted that if the impossible task of reconciling the contradictions of the Upanishads and rendering them to a harmonious and consistent whole is to be attempted at all, Shankara's system is about the only one that could do it.'

25. A. Berriedale Keith— 'Philosophically, Shankara is remarkably ingenious in His key to the Upanishads, the finding of a higher and lower knowledge which similarly allows him to conform to the whole apparatus of Hindu belief on the lower plane, while on the higher he finds no true reality in any thing. His logic, it has been well said, starts by denying the truth of the proposition. A is either B or not B. His dialectical skill is very great. In style, Shankara's Bhashya is unquestionably far advanced from the dialogue tone of Mahabhashya (of Patanjali) or the Bhashyas of Vatsyayana or Sabara Swami. It has taken on the style of lecture with longer sentences, longer and more compounds, more involved constructions, fewer verbal and more nominal forms.'

Note— H. H. Wilson, James Hastings, Dr. A. C. Bouquet, J. C. Oman, Dr. Theos Bernard, Gertrude Emerson, Dr. Burnell, Sir M. Williams, Horace L. Friers, Herbert H. Shneide, J. Estlin Carpenter, Rev. A. R. Slater, Charles A. Moore, L. D. Barnett, Max Walleser, are some scholars who have praised Sri Shankara and Indian Philosophy. The list is long one and a few names are given.

●

श्री गुरुभ्यो नमः

आद्य श्री शङ्कराचार्य : आविर्भाव काल

[समीक्षा व निर्णय]

(क) विषय - प्रवेश

महापुरुषों के लिखे हुए ग्रंथों के ध्येय व उपदेश सुन पढ़कर और स्वानुभूति द्वारा जो भाग्यवान पुरुष परमानन्द का अनुभव करते हैं, वे उन महापुरुषों के बारे में अनेक कल्पित चरित्र कथाओं पर जो प्रायः काव्य रूपों में प्रचलित हैं कोई ध्यान नहीं देते या चिन्तन नहीं करते। ऐसे पुरुष को अभाग्यवश उन ग्रंथों को जानने, अनुष्ठान में लाने और अनुभव करने का ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है, वह महान पुरुषों का साङ्गोपाङ्ग जीवन चरित्र, क्रियाकलाप और छोटी-छोटी जीवन घटनाओं की महिमा या उपदेशपरक कथाओं को सुन या पढ़ कर कुछ न कुछ अवश्य लाभान्वित होते हैं। महानों की चरित्रगाथा अवश्य ही मन्द और सामान्य बुद्धिवाले मनुष्य के हृदय में स्फूर्ति उत्पन्न करती है। मनुष्य की स्वाभाविक दुर्बलता है कि अपनें दोषों व त्रुटियों को जानते हुए भी उन्हें तब तक नहीं छोड़ता जब तक उसे कोई गम्भीर प्रेरणा प्राप्त न हो। महान पुरुषों की जीवन-गाथा इसी प्रकार की प्रेरणा प्रदान करने की शक्ति रखती है। उसके अध्ययन से पाठक को अपने जैसे समान गुण-दोषों से युक्त किसी अन्य प्राणी के चरित्र को देखने का अवसर मिलता है। तब वह अपने जीवन से दोषों को दूर करने का प्रयत्न करता है। वास्तव में समाज के विकास का विधान करनेवाला साधन महानों की जीवनगाथा ही है जो सब साहित्यरूप में लिखी गयी है। महानों की जीवनगाथा हृदय को परिष्कृत करने के साथ ही जीवन को पवित्र, सदाचारयुक्त और आनन्दमय बनाती है। भगवान भक्तों के कल्याण के लिए विभूतिपुरुष के रूप में यहाँ आते हैं। और इसका हेतु भक्तों के लिए जीवन लीला का विस्तार करना है। ऐसे ही एक वेदोद्धारक, सर्वशास्त्रनिष्णात, परमयोगी व ज्ञानी, सिद्धमहापुरुष, प्रातःस्मरणीय महान विभूतिपुरुष उत्पन्न हुए जिनका पूज्य नाम आचार्य श्री शंकर भारती है। आचार्य शंकर भाष्य में लिखते हैं —'यथा च वर्तमाना ब्रह्मविदः प्रारब्धभोगक्षये कैवल्यमनुभवन्ति, एवं अपान्तरतमः प्रभृतयोऽपि ईश्वराः परमेश्वरेण तेषु तेषु अधिकारेषु नियुक्ताः'। तदनुसार शंकर ने स्वयं आत्मज्ञानी जीवन्मुक्त होते हुए भी लोक-कल्याण के लिए अपनी आयु का अर्पण किया। इतिहासवेत्ता एवं भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसादजी एक पत्र में लिखते हैं 'धर्म परम्परा, सामाजिक चिन्तन, साहित्य निर्माण और इतिहास, इन सभी दृष्टियों से आदिगुरु श्री शंकराचार्य की जीवनगाथा तथा उनकी कृतियाँ देश भर के लिए एक बहुमूल्य निधि है।'

कुछ मठाधीश एवं उनके अनुयायी प्रचारक विद्वान अब प्रचार करने लगे हैं कि आचार्य शंकर के जीवनचरित्र-घटनाओं एवं क्रियाकलापों पर (जन्मस्थल, आविर्भाव-काल,

संन्यास दीक्षा स्थल, आम्नायमठ स्थापना, सर्वज्ञपीठारोहण स्थल, निर्याण स्थल) वाद, विवेचन एवं अन्वेषण करना निरर्थक एवं अनावश्यक है और सब को आचार्य शंकर के उपदेशों को समझने एवं अनुष्ठान में लाने का प्रयत्न करना चाहिये। क्या ही अच्छा होता कि अपने द्वारा प्रचारित आचार्य शंकर का नवीन चरित्र जो सब भ्रमात्मक, कल्पनात्मक, विवादास्पद एवं मिथ्या प्रचार है, इसे प्रारम्भ ही नहीं करते। स्वयं मिथ्या विवादास्पद विषयों को प्रचार द्वारा खड़ा कर और जब विज्ञ विद्वान इनका खण्डन करने लगे तो वे ऐसा उपदेश देने लगे, भला यह कहाँ तक न्यायसंगत है। जो लोग उपदेश दे रहे हैं, स्वयं वे यह चाहते हैं कि हम लोग इन कल्पित, भ्रमात्मक, अप्रामाणिक ग्रंथों, प्रचार पुस्तकों, नवीन चरित्र प्रचारों को भूल जाये ताकि जितनी पुस्तकें अभी तक प्रचारित हुई हैं, वे सब बिना खण्डन के रह जायें ताकि कुछ काल के बाद यही पुस्तकें प्रमाण के रूप में पुनः प्रचारित की जायँ। इन प्रमाणाभास कल्पित पुस्तकों को प्रामाणिक ठहरा कर अपनी भावी सन्तानों को भी धोखा देने एवं उन्हें इस मिथ्या कल्पित पथ पर ले जाने के पाप के भागी होंगे। अतएव इन भ्रामक प्रचारों पर शोध कर यथार्थ विषयों का प्रकाशन करना आवश्यक प्रतीत होता है। आचार्य शंकर ने स्पष्ट कहा है कि वस्तु व्यवहार में पक्षान्तर (विकल्प) होना संभव है परन्तु वस्तु के स्वभाव-गुण में पक्षान्तर होना असम्भव है। आचार्य शंकर ने यह भी कहा है कि बाह्यपदार्थविषयक वादविवाद विषयों में अपनी विवेकपूर्ण विचारशक्ति द्वारा निर्णय लेकर एक को ग्रहण करना और अन्य का परित्याग करना आवश्यक एवं कर्तव्य है—"विप्रतिपत्तौ च स्मृतीनाम् अवश्यकर्तव्येऽन्यतर-परिग्रहेऽन्यन्यतर परित्यागे"— स्मृतियों के परस्पर विरोध होने पर एक का ग्रहण और अन्य का परित्याग अवश्यकर्तव्य होने से (सू. भा. 2-1-1)। विवादास्पद विषयों में आचार्य शंकर ने स्पष्ट कहा है कि विवेकयुक्त विचारशक्ति द्वारा निर्णय करना आवश्यक एवं कर्तव्य है, यथा "परतन्त्र प्रज्ञस्यापि-प्रज्ञा संग्रहणीया।" "— परतंत्र बुद्धिवाले पुरुष का भी अकस्मात् बिना कारण किसी विशेष स्मृति के विषय में पक्षपात युक्त नहीं है, क्यों कि किसी परतंत्रप्रज्ञका किसी विशेष स्मृति में पक्षपात होने पर पुरुष बुद्धि की विचित्रता से तत्व की अव्यवस्था हो जायेगी। इससे स्मृति विरोध के उपन्यास से यह स्मृति श्रुति अनुसारी है, यह स्मृति श्रुति अनुसारी नहीं है, इस विषय का विवेचन कर उसकी भी बुद्धि सन्मार्ग में लाना चाहिये।" (सू. भा, 2-1-1.)। अपने को आदि शंकराचार्य के अनुयायी कहनेवाले अब क्यों विवेचन करने और भूले-भटके बुद्धिवाले पुरुषों को सन्मार्ग में लाने का प्रयत्न करनेवालों पर कीचड़ फेक रहे हैं ? यथार्थता जानने के लिए क्यों हिचक रहे हैं ?

इस कर्मज्ञानमय भारत देश के दूर दक्षिण केरल प्रान्त में कालटी नामक अग्रहार में 'कैप्पिल्लि' वंशज, अत्रिगोत्र, कृष्णयजुर्वेदी, तैत्तिरीय शाखा, नम्बूदिरि ब्राह्मण दम्पति श्री शिवगुरु, श्री सति आर्याम्बा के गृह में श्री शंकराचार्य ने वैशाख शुद्ध पंचमी के दिन अवतार लिया था। यह समय था जब भारत देश में मूल बौद्ध सिद्धान्तों में बुद्धदेव के करीब 1300 वर्ष पश्चात् अनेक परिवर्तन देखा जाता है, यथा हीनयान और महायान में विभाजित होकर प्रचार होने लगना, सौत्रान्तिक, विज्ञानवाद, शून्यवाद, योगाचार, आदि

नामों से बौद्धमत के विभिन्न वादों या शाखाओं का प्रचार होने लगा जिनकी असङ्ग, वसुबन्धु, दिङ्नाग, नागार्जुन, आदि विद्वानों द्वारा पुष्टि की गयी थी। उस समय तान्त्रिकों का प्रभाव अधिक था। वामाचार ग्रंथ 'गुह्य समाज तंत्र' जो 'मंजुश्री मूलकल्प' पर आधारित था, इसका प्रसारण अधिक मात्रा में था। पुनः वज्रायन, तंत्रायन व मंत्रायन में परिवर्तित हुआ। जैन, शाक्त (वामाचार), सौर, गाणपत्य, पांचरात्र, तान्त्रिक, पाशुपत, कापालिक, कालमुख, चार्वाक (लोकायतिक), सहजायन, कालचक्रायन, आदि वेदविरुद्ध संप्रदायों से भारतवर्ष पूर्ण अधिकृत था। जीवन अंधाधुंध प्रवंचनाओं का शिकार हो रहा था। वेद और धर्म अवैदिकता के पंक में धँसा जा रहा था। अनाचार व अकर्मण्यता अधिक मात्रा में फैल गयी। व्यक्तिगत तथा सामाजिक नैतिकता नष्ट हो चली। सांख्य, योग, न्याय, और वैशेषिक दर्शनों का प्रसारण भी था। सातवीं-आठवीं शताब्दी ई० में श्री कुमारिल भट्ट ने अपनी विद्वत्ता एवं कर्मकाण्डनिष्ठ आदर्श जीवन से पूर्वमीमांसा के सिद्धान्तों का पुनः उद्धार कर स्थापना की और वेद के प्रति विश्वास एवं श्रद्धाभाव मानव समाज में पुनः उत्पन्न कर उत्तरी भारत के बौद्धों के प्रचारों का खण्डन करके वैदिक धर्म की नींव पुनः डालते हुए श्री शंकराचार्य के कार्य कलापों की पृष्ठभूमि तैयार की थी। यह समय था जब लेखनी की लड़ाई थी— वात्स्यायन और वसुबन्धु के सिद्धान्तों ने दिङ्नाग के न्यायमतों का खण्डन किया था। उद्योतकर और दिङ्नाग के बीच अपने अपने सिद्धान्तों की लेखनी-लड़ाई जारी थी, उद्योतकर तथा कुमारिल भट्ट का खण्डन धर्मकीर्ति के सिद्धान्तों पर था। ऐसे समय में आचार्य शंकर नें अपने आक्षेपों से प्रहार किया था। दूर दक्षिण भारत में पल्लव, चोल, चेर, पाण्ड्य आदि राज्यों में सनातन वैदिक धर्म का प्रचार होने लगा। नायन्मारों और आलवारों का प्रचार एवं शैवसिद्धान्त मत के प्रचार ने यहाँ के बौद्ध धर्म और जैन धर्म को बलहीन बना दिया। उस समय भारतवर्ष के अन्य मतों के सिद्धान्तों ने भी मूल बौद्धमत के प्रभाव को घटाने में सहयोग दिया था। ऐसे वातावरण में आचार्य शंकर ने अपने ज्ञानकाण्ड की महत्ता बढ़ायी और इसे बौद्ध धर्म सह न सका और धीरे-धीरे बौद्ध धर्म भारतवर्ष छोड़ अन्य देशों में फैलने लगा।

अधर्म, अवैदिक, पाखण्डप्रधान अनाचारपूर्ण मतों का नाश करने, जीर्ण हुए वैदिक मत का उत्थान करने, वैदिक धर्म की विजय वैजयन्ती फहराने, षण्मत स्थापित करने, संन्यास धर्म एवं उस धर्म के अनुष्ठानों की विधि (श्रवण, मनन, निदिध्यासन, आदि) और उनसे उत्पन्न होने वाले ज्ञान, आत्मनिष्ठा आदि को साधारण पामरजनों को समझाने एवं स्वयं अनुष्ठान करके कार्यकला को दिखाने, अविद्या को नाश करके सद्रूप ब्रह्मज्ञान की प्रतिष्ठा करने तथा अद्वैतमत का पुनः प्रचार करने के लिए आचार्य शंकर ने जन्म लिया था। उन्होंने धर्म के इतिहास में एक नये युग का प्रादुर्भाव किया। वेद, उपनिषद, गीता आदि का शंखनाद होने लगा। आचार्य शंकर की दृष्टि में सर्वत्र व्याप्त ब्रह्म भौगोलिक सीमाओं से घिरा नहीं है और देश-काल की सीमाओं से अतीत और सर्वत्र विद्यमान है। मनु की सन्तान का ही सर्वत्र निवास है और मानवीयता सब में समान है, यद्यपि आचार, विचार व व्यवहारों में भिन्नता है। आचार्य शंकर ने अपने विचारों से मानव विचारों की धारा पलट दी थी और आप की गणना संसार के दार्शनिकों में की जाती है। आप

लोकगुरु थे, अब भी हैं और रहेंगे। आचार्य शंकर नें धर्म की प्रतिष्ठा, वेदों के प्रति श्रद्धा, ज्ञान के प्रति आदर, आध्यात्मिक सूत्र से भारतीयों को संघटित करके एकता का रूप एवं एक समन्वयात्मक दर्शन की प्रतिष्ठा आदि स्थापित की थी, तथापि बौद्ध संघ, विहार, भिक्षु आदि संस्थाओं की व्यवस्था से प्रभावित होकर आपने धर्मप्रचार निमित्त संस्था की व्यवस्था की थी। संन्यासियों को संघबद्ध करके इन विरक्त त्यागी महानों को एकत्र करके एक संघ के रूप में बाँधकर वैदिक धर्म के भविष्य कल्याण के लिए महान् कार्य किया था। चतुराम्नाय मठों के प्रतिष्ठाकार्य से उसे मठाम्नाय एवं महानुशासन द्वारा बद्ध किया था एवं संन्यासी संघ में कुछ नवीन प्रणाली प्रारम्भ की थी। भारतवर्ष में आचार्य शंकर की दिग्विजय यात्रा उनके व्यक्तित्व का एक दिग्दर्शन मात्र है जिसने समूचे देश में व्यापक प्रभाव उत्पन्न किया था। कुम्भमेला महापर्व स्नान परम्परा से अनादि है और इसे 'कुम्भ पर्व स्नान' कहा जाता था। वर्तमान में यह 'शाही स्नान' के नाम से प्रचलित है। आचार्य शंकर ने इस कुम्भ पर्व स्नान की प्रथा जो पूर्वकाल में दुर्बल हो गयी थी उसे पुन: उज्जीवित और व्यवस्थित किया था।

तीसरे वर्ष में बालक शंकर का चूडाकरण संस्कार हुआ। पाँचवें वर्ष में उपनयन होने पर आपने कालटी में वेद और वेदाङ्गों का अध्ययन किया। आठवें वर्ष में कालटी के पूर्णा (चूर्णा) नदीतट पर आकस्मिक घोर दुर्घटना से बच कर मानसिक आतुर संन्यास लेकर तदनन्तर नर्मदा नदीतट पर रहनेवाले गुरु श्री गोविन्दभगवत्पाद से शास्त्रोक्त संन्यास-दीक्षा व ब्रह्मविद्या-शिक्षा प्राप्त की। प्रस्थानत्रय भाष्य की रचना हिमालय की बदरी सीमा में एवं काशी में समाप्त की। काशी मे श्री व्यासरूप में आये एक बृद्ध कृष्णकाय ब्राह्मण से विवाद करके अपने द्वारा रचित भाष्य की प्रतिष्ठा स्थापित कीं। काशी में श्री विश्वेश्वर कां सान्निध्य भी हुआ। आचार्य शंकर ने काशी से प्रयागराज पहुँचकर श्री कुमारिल भट्ट से भेंट की। कुमारिल भट्ट के आदेश पर कर्पकाण्डी मण्डन विश्वरूप मिश्र से शास्त्रार्थ के लिए आचार्य शंकर माहिष्मती को चल पड़े। रास्ते में अन्य एक कर्मकाण्डी गृहस्थ मण्डन मिश्र ('ब्रह्म सिद्धि' के रचयिता) से भेंटकर विवाद किया। यह मण्डन मिश्र गृहस्थ ही रह गये। आचार्य शंकर ने माहिष्मती पहुँचकर कर्मकाण्डी मण्डन विश्वरूप मिश्र से विवाद किया। उनको पराजित कर संन्यासाश्रम भी दिया। आप ही वार्तिककार श्री सुरेश्वराचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। व्यवहाररूढ़ि में उनका अन्य एक नाम श्री विश्वरूपाचार्य भी था।

आचार्य शंकर अपने शिष्यों सहित भ्रमण करते हुए माहिष्मती से श्री शृंङ्गगिरि पहुँचे। यहाँ कुछ काल वास करते हुए भाष्य प्रवचन भी किया, अन्य प्रकरण ग्रन्थों की रचना भी की। शृंङ्गगिरि में माता शारदा की प्रतिष्ठा करके अपने स्वाश्रम श्रृंगेरी में निजमठ एवं व्याख्यान सिंहासन पीठ की स्थापना करके श्री सुरेश्वराचार्य को दक्षिणाम्नाय मठ निर्वाहभार छोड़ कर कालटी पहुँचे। आतुर संन्यासाश्रम लेने के पूर्व अपनी माता श्री की दी हुई प्रतिज्ञा के अनुसार कालटी पहुँच कर माता के दाहसंस्कार की पूर्ति की। पश्चात् दिग्विजय यात्रा में चल पड़े। अवैदिक पाखण्ड मतों का खण्डन करते हुए अद्वैतवाद का जीर्णोद्धार किया और अनेक मन्दिरों का निर्माण, जीर्णोद्धार, देवदेवीमूर्तियों

की उग्रता शान्त व अशुद्धता निवारण करते हुए वैदिक मार्ग पूजा प्रथा का प्रारम्भ कराया। अनेक देवयोनि पीठों में श्रीचक्र प्रतिष्ठा भी की। आप के अनेक शिष्य ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यासी भी थे। इनमें से चार प्रमुख शिष्यों को (श्रीसनन्दनाचार्य या श्री पद्मपादाचार्य- काशी में दीक्षा; श्री सुरेश्वराचार्य या श्री विश्वरूपाचार्य माहिष्मती में दीक्षा, श्री हस्तामलकाचार्य-श्री'बली ग्राम में दीक्षा; श्री आनन्दगिरि या तोटकाचार्य-शृङ्गगिरि में दीक्षा) दीक्षा देकर अपनी प्रधान शिष्य-टोली बनाया। अवतार का उद्देश्य अक्षुण्ण रखने एवं अद्वैतवाद का प्रचार करने तथा सनातन वैदिक धर्म का रक्षण और प्रचार करने के हेतु श्रुति, स्मृति व पुराणों के आधार पर इस कर्मज्ञान यज्ञमयी पुण्य भारतभूमि को यज्ञ की वेदी मानकर, आम्नायानुसार चार वेदों व चार उपदेष्टव्य महावाक्यों के लिए चार दृष्टिगोचर दिशाओं में चतुर्धाम और उनके समीप चार धर्मराज्य केन्द्र (आम्नायमठ) प्रतिष्ठा करके (पूर्व-ऋग्वेद, प्रज्ञानं ब्रह्म, जगन्नाथपुरी, गोवर्धन मठ, दक्षिण-यजुर्वेद, अहं ब्रह्मास्मि, शृङ्गगिरि, शृंगेरीमठ, पश्चिम-सामवेद, तत्त्वमसि, द्वारकाधाम, द्वारकामठ, उत्तर-अथर्वणवेद, अयमात्मा ब्रह्म, बदरीनाथ धाम, जोशी मठ, दो आम्नाय मठ समुद्र किनारे और दो आम्नायमठ पर्वत पर) तथा आम्नाय मठों की व्यवस्था एवं पद्धति (मठाम्नाय-महानुशासन) बनाकर, अपने मुख्य चार शिष्यों को तत्तत् स्थानों में बिठाया।

धर्मदिग्विजय यात्रा के अन्त में काश्मीर पहुँचकर वहाँ के प्राचीन सर्वज्ञपीठ पर (शार्दीग्राम से प्रख्यात्) आरोहण भी किया। दिग्गज विद्वानों ने आप के सर्वज्ञ होने का विषय स्वीकार किया। यहाँ से आचार्य शंकर हिमालय केदारनाथ सीमा पर पहुँच कर अपने बत्तीसवें वर्ष के अन्त में हिमालय के केदारनाथ मन्दिर के समीप (कैवल्यधाम) इस नश्वर शरीर को यहीं छोड़ कर अपने धाम जा पहुँचे। उक्त चरित्र कथा विवरण के विरुद्ध जो कुछ कथाप्रचार किया जाय सो सब स्वेच्छावादी प्रमाणरहित कथा ही होगी। आचार्य शंकर ऐतिहासिक एक महान विभूतिपुरुष हैं और आपकी जीवन लीला, अद्वैतवाद एवं प्रस्थानत्रय भाष्य आदि से सिद्ध होती है कि आप न केवल महान् विभूतिपुरुष थे परन्तु वेदान्त दर्शनके एक नये युग के प्रवर्तक भी थे। कुम्भकोण-कांची कामकोटि मठ एवं उनके प्रचारक इस अद्वितीय महान देवपुरुष के जीवनचरित्र में एवं उनके गुरु तथा परमगुरु के चरित्र में पुराकाल ऐतिहासिक व्यक्तियों की कथाओं को मिलाकर एवं नये-नये वृतान्तों के विवरण द्वारा नवीन समस्याएँ खड़ी कर नवीन चरित्र कथा का परिचय देते हैं जो उचित और न्यायपूर्ण नहीं है। (देखिये 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श', 'Truth about Kuṃbakonam Mutt', Kanchi Kamakoti Math-A Myth एवं Kamakoti shathakoti.)।

काश्मीर स्थित शारदापीठ (सर्वज्ञपीठ) के विषय में विद्वानों ने पत्र लिखकर पूछा था कि हम इसका विवरण दें। कांची कामकोटि मठ का प्रचार है कि काश्मीर में 'सर्वज्ञपीठ नहीं है। कांची ही काश्मीर है। आचार्य शंकर ने कांची में सर्वज्ञपीठ की प्रतिष्ठा करके उसी में आरोहण किया था।' अतः जो जानकारी मुझे प्राप्त है उसे अन्यों के साथ बाँटना चाहता हूँ। राजतरङ्गिनी (1148-50 ई०) में लिखा है कि 'गंगोत्पत्ति स्थान जो भेदगिरि है, उसके एक शिखर में एक रम्य सरोवर है जिसमें क्रीड़ा करनेवाला हंस है और यहीं

शारदा देवी हैं।' इस तीर्थ को 'बुद्ब्रार' कहते हैं। मधुमती नदी सरस्वती नदी से मिलती है और आगे यही मधुमती नदी कृष्णगंगा नदी से मिलती है। इसी नदी संगम के समीप शारदा पीठ है। श्रीनगर से दूर उत्तर-पश्चिम पहाड़ सीमा में बोलोर घाटी को पारकर 'गोषपुरी' ग्राम पहुँचते हैं जहाँ शारदा मन्दिर के पुजारी लोग वास करते हैं। यहाँ से आगे 'हयग्रीव आश्रम' है जिसे 'हे होम' शहर कहते हैं। इस आश्रम के समीप श्रीगणेशरूप में एक छोटा पहाड़ है। इसी के समीप 'शाण्डिल्य ऋषि तपोवन' है। इसी तपोवन को 'शारदावन' कहते हैं और यह घना जंगल है। इस शारदावन में एक ग्राम है जिसे 'शार्दी' कहते हैं। मधुमती नदी के किनारे पहाड़ और यहाँ शिवलिङ्ग मूर्तियों का मन्दिर भी है। इसके समीप 'अमर कुण्ड' एक तालाब है। इस तालाब के समीप शारदा देवी मन्दिर है और इस मन्दिर के मूलस्थान में माता शारदा ने शाण्डिल्य मुनि को दर्शन दिया था। यह मन्दिर समुद्र तल से 11,000 फीट ऊँचा है। इस मन्दिर के चारों तरफ चार प्रवेश- दरवाजे हैं। यहाँ श्रीचक्र एवं सर्वज्ञपीठ शारदा माता का पूजन होता है। अल़बिरूनी (1030 ई०) कहते हैं कि यहाँ माता शारदा की काष्ठमूर्ति थी। काश्मीर महाराजा ललितादित्य मुक्तपीड के समय में भी शास्त्रार्थ के लिए भारतदेश के विद्वानों के यहाँ आने का विवरण इतिहास बताता है। विनायक भट्ट रचित 'सांख्यायन भाष्य' में कहा है कि विद्वान शास्त्रार्थ के लिए यहाँ आते थे और विद्या अध्ययन के लिए भी आते थे। आचार्य शंकर द्वारा रचित 'प्रपंचसार' का प्रथम श्लोक शारदा स्तुति है। चीनी यात्री हुवन च्वाङ्ग लिखते हैं कि विद्वान यहाँ शास्त्रार्थ के लिए आते थे। चौदहवीं शताब्दी में मुसलमानों के आक्रमणों से यह मन्दिर जीर्ण हो गया। 19 वीं शताब्दी में जब डोगरा वंश राज्य करने लगे, इस मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ। वर्तमानकाल में यह भू- सीमा पाकिस्तान के कब्जे में है।

प्राचीन भारतवर्ष में इतिहास में एक मार्के का विषय है कि यद्यपि इन महान पुरुषों के विचार, ध्येय, ग्रंथ और उनकी संस्कृति इत्यादि परम्परागत चले आ रहे हैं, तथापि उनके चरित्रों के विषय में ज्यादा कुछ मालूम नहीं पड़ता। इन महान पुरुषों ने अपने रचित ग्रन्थों में अपने विषय में कुछ भी उल्लेख नहीं किया। यह दुख की बात है कि हमारे यहाँ इतिहास व जीवनचरित्र लेखन की प्रथा ही नहीं थी। यदि घटनाओं पर, व्यक्तियों पर कुछ लिखा भी गया तो उनके पूर्वापर सम्बन्ध, तिथि, चरित्र से सम्बन्धित घटनाओं का विवरण आदि को कोई महत्व नहीं दिया जाता था। हमारे महान् पूर्वज या तो आवश्यकता से अधिक नम्र थे या सांसारिक जीवन को तुच्छ समझ कर पारलौकिक सत्ता पर दृष्टि डाले हुए थे। आत्मकथा-स्वयं प्रख्याति होने तथा मात्र अहंकार प्रकाशन का स्वरूप होने के कारण पुराकाल में उन महापुरुषों ने अपनी कथा कहीं लिखी ही नहीं। 'परमपुरुषःस्वस्मै स्वप्रीतये स्वयमेव कारयति' के अनुसार भारतवर्ष में पुराकाल के व्यक्ति यह विश्वास करते थे कि व्यक्ति का जन्म और मरण अपने अपने किये कर्मों के आधार पर ईश्वरेच्छा से होता है। और ईश्वर आयोजित इस लोक व उसके कार्यक्रम में हर एक व्यक्ति अपनी निर्धारित जीवनलीला समाप्त करते हैं तथा 'तेन विना तृणमपि न चलति' के अनुसार अपनी इहलीला को भी 'ब्रह्मार्पणमस्तु' करते हुए अपने को उस

भगवान के हाथ का एक शस्त्र मानकर एवं 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' पर ध्यान रखते हुए, अपने निर्धारित कर्मों को करते थे। सम्भवतः इन्हीं कारणों से उन्होंने आत्मकथा कहीं भी लिखी नहीं। आचार्य शंकर ने ज्ञान, उपासना और कर्म को यथास्थान प्रतिष्ठित किया और उनमें स्वार्थ, प्रतिष्ठा एवं पक्षपात का लवलेश भी न था। आचार्य शंकर देहाभिमानरहित, वीतराग, पूर्णबोधस्वरूप और ऐकात्म्यद्रष्टा थे। किसी ने ठीक ही कहा है— "नामरहित रहना भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण तत्व है।" सचाऊ अल्बेरूनी के 'भारत' खण्ड दो में लिखा है— 'हिन्दू घटनाओं के ऐतिहासिक क्रम के प्रति उदासीन हैं। तिथि के अनुक्रम के सम्बन्ध में वे अत्यन्त लापरवाह हैं। जब-जब उनसे कोई ऐसी बात पूछी जाती है जिसका वे उत्तर नहीं दे पाते तब-तब वे कहानियाँ गढ़ने लगते हैं'। मेरी समझ में यह कथन अधिक मात्रा में सत्य है।

आचार्य शंकर का आविर्भावकाल, कुछ जीवन-घटनाएँ, आम्नायमठ स्थापन, सर्वज्ञपीठारोहण स्थल, निर्याण स्थल एवं उनसे रचित ग्रन्थों के सम्बन्ध में आजकल इन विषयों पर बहुत विवाद है। आचार्य शंकर के चरित्र विवरण आठ या दस शंकर विजयों में पाये जाते हैं पर ऐतिहासिक दृष्टि से इन सब पुस्तकों को उतना महत्व दे नहीं सकते, चूँकि आचार्य शंकर के जीवन काल में ये सब ग्रन्थ नहीं लिखे गये थे। सभी आचार्य शंकर के बहुकाल (कई शताब्दी) पश्चात् की लिखी हुई पुस्तकें ही मिलती हैं। इनके पौर्वापर्य का निर्णय करना कठिन है। इन दस शंकर विजयों में केवल कुछ ही प्रकाशित हुए हैं और शेष केवल नाम से प्रसिद्ध हैं। अभीतक कोई प्रामाणिक शिलालेख, ताम्रपत्रशासन, यथार्थ चरित्र ग्रंथ जिसमें आचार्य शंकर को प्रत्यक्ष देखा या समसामयिक काल में सुना जन्म चरित्र का वर्णन किया गया हो, प्राप्त नहीं हुआ है। सुना जाता है कि आचार्य शंकर के चार प्रधान शिष्यों ने 'गुरु विजय' नामक ग्रंथ लिखा था पर अब एक भी कहीं उपलब्ध नही हैं। कहा जाता है कि पद्मपादाचार्य ने अपने गुरु का चरित्र वृतान्त 'विजय डिण्डिम' ग्रन्थ में लिखा था, पर यह ग्रन्थ भी उपलब्ध नहीं है। ये सब कहे जाने-वाले ग्रंथ सदा के लिए नष्ट हो गये हैं। यह भी कहा जाता है कि आनन्दगिरि (तोटकाचार्य) ने 'शंकर विजय' या 'प्राचीन शंकर विजय' ग्रंथ रचा था। पर यह ग्रन्थ भी उपलब्ध नहीं है। 'बृहच्छंकर विजय' (चित्सुखाचार्य रचित) एवं 'प्राचीन शंकर विजय' किसी ने नहीं देखा है। यह कहीं उपलब्ध भी नहीं है। केवल नाम मात्र से प्रसिद्ध है। स्वेच्छावाद की पुष्टि में कुछ मनगढ़न्त श्लोकों को निर्दिष्ट या उद्धृत कर एवं अनुपलब्ध 'बृहच्छंकर विजय' या 'प्राचीन शंकर विजय' का हवाला देना कितना प्रमाण में लिया जा सकता है ? विवादास्पद विषयों के बारे में ही ऐसे स्वकल्पित श्लोक हैं। क्यों नहीं अन्य चरित्र विषयों के बारे में भी श्लोक उद्धरण किया गया ? सम्भवतः वाङ्मुख (उपन्यास) द्वारा प्राचीन काल में शंकर चरित्र की घटनाएँ वर्णित हों और वे ही कथा परम्परा से व्यवहार रूप में आकर पश्चात् शंकर विजय या चरित्र वृत्तान्त पुस्तक के रूप में परिवर्तित हुई हों। जितनी भी प्रकाशित एवं हस्तलिखित प्रति उपलब्ध हुई हैं उन सबकी एक मूल एवं प्राचीन पुस्तक होना आवश्यक है। पर अभी तक ऐसी कोई भी मुद्रित या अमुद्रित मूल पुस्तक उपलब्ध नहीं हुई है। शंकरविषयक वाङ्मय के रचयिता ऐसे लोग रहे हैं

जिनका आचार्य शंकर के प्रति सीमातीत आदर का भाव रहा है और जो उनके भक्त, अनुयायी, प्रशंसक या उनकी मठ-परम्परा के थे। कुछ लेखकों ने द्वेषभाव से अवांछनीय भाषा में इनकी जीवनलीला पर धब्बे लगने योग्य कल्पित घटनाओं का चरित्र में समावेश कर टीकाटिप्पणी भी की है-यथा-आनन्दगिरि या अनन्तानन्दगिरि या आनन्दज्ञान या आनन्दज्ञानानन्दगिरि द्वारा रचित शंकर विजय और इसकी परिष्कृत मुद्रित एवं अमुद्रित प्रतियाँ, मणिमंजरी, शंकर प्रादुर्भाव, कूष्माण्ड शंकर विजय, पद्मपुराण के कुछ कहे जाने वाले श्लोक, तिब्बतीय बौद्ध गाथा, जैन ग्रंथ आदि हैं। डिण्डिम टीकाकार धनपतिसूरि एवं अन्य एक टीकाकार अच्युतराय पण्डित (अद्वैतसाम्राज्य लक्ष्मी टीका) द्वारा निर्देशित 'बृहच्छंकर विजय' या 'प्राचीन शंकर विजय' या 'आनन्दज्ञान शंकर विजय 'अब उपलब्ध नहीं हैं। वाक्पतिभट्ट रचित 'शंकरेन्द्र विलास' भी उपलब्ध नहीं है । डिण्डिम टीकाकार ने आनन्दगिरि से उद्धृत किया है और यह गद्य-पद्यात्मक चम्पूरूप में था, सो भी अब उपलब्ध नहीं है। माधवीय द्वारा निर्देशित 'बृहत् प्राचीन विजय' का भी किसी ने न स्वरूप देखा है, न प्रतिपादित विषय।

माधवीय शंकर विजय (संक्षिप्त शंकर विजय या शंकर दिग्विजय) आनन्दगिरि या अनन्तानन्दगिरि शंकर विजय (गुरु विजय या आचार्य विजय), व्यासाचल (माधवीय शंकर विजय की परिष्कृत प्रति), चिद्विलासीय (शंकरविजय विलास), सदानन्दीय (शंकरदिग्विजयसार-माधवीय की संक्षिप्त प्रति), शंकराभ्युदय (राजचूडामणि दीक्षित-सन्देहास्पद पुस्तक), केरल कवि गोविन्दनाथ का आचार्य चरित्र (केरलीय शंकर विजय), आचार्य विजय चम्पू (परमेश्वर), गुरुवंश काव्य (काशी लक्ष्मण शास्त्री), गुरुपरम्परा चरित्र (पिङ्गल गोपालशास्त्री), आदि कुछ पुस्तकें प्राप्त होती हैं जो सब आचार्य के अनेक सदी पश्चात् काल में लिखी गयी पुस्तकें हैं। खेद के साथ लिखना पड़ता है कि कांची कामकोटि मठ और उनके प्रचारक 'माधवीय शंकर विजय' को अप्रामाणिक सिद्ध करने के लिए एवं उसकी मान्यता को घटाने के लिए नाना प्रकार का मिथ्या भ्रामक प्रचार करते हुए कीचड़ फेंक रहे हैं। माधवीय शंकर विजय अधिक लोकप्रिय, प्रसिद्ध एवं प्रामाणिक ग्रंथ है। प्रो० एस. के. वेलवालकर लिखते हैं (Vedanta Philosophy- Poona-1929) कि शंकर विजय ग्रंथ पक्षपात भावना से लिखे गये हैं और एक अन्य मठ की अनुमति से एवं एकतरफा लिखे गये हैं, कुछ ग्रंथ प्रामाणिक एवं परम्पराप्राप्त इतिहास को दूषित करने के लिए लिखे गये हैं। श्री एन. भाष्याचार्य (The Age of Shankaracharya, Adayar Library, 1915) लिखते हैं कि आचार्य शंकर का 'केरलोत्पत्ति', 'कोङ्गुदेशराजाक्कल', 'ग्राम पद्धति', 'नेपाल वंशावली' आदि ग्रंथों में दिये गये सब चरित्र वर्णन अविश्वसनीय हैं और उन्हें प्रमाण में नहीं लिया जा सकता है।

कुछ अनुसन्धान करनेवाले विद्वानो का अभिप्राय है कि जो सब शंकर विजय एवं चरित्र पुस्तकें अब उपलब्ध हैं उनमें दी गयी ज़ीवनगाथा के वर्णन भी परस्पर विरोधी एवं अग्राह्य तथा आचार्य शंकर की यथार्थ जीवनलीला का वर्णन नहीं करते हैं, अतएव ये सब अग्राह्य हैं। मार्के की बात है कि इन विद्यमान शंकर विजयों में यद्यपि विभिन्नता पायी जाती है तथापि कई विषयों में पर्याप्त समता भी है। यदि इन ग्रंथों का तुलनात्मक

अध्ययन किया जाय और इतिहास एवं अन्य बाह्य व पुष्टि प्रमाणों से लब्ध विषयों एवं पुरातत्वविभाग के प्रचुर प्रमाणों के आधार पर इन विभिन्न विषयों का समन्वय किया जाय तो आचार्य चरित्र की प्रधान घटनाओं की चरित्रसामग्री भी मिलती है।

वेदव्यास (कृष्णद्वैपायन या बादरायण) द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र (न्याय प्रस्थान, शारीरक मीमांसा, भिक्षुसूत्र) एक प्राचीन एवं महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। अल्प शब्दों में परब्रह्म के स्वरूप का साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है, इसीलिए इसे ब्रह्मसूत्र कहते हैं। वेद की चरम सीमा का निदर्शन एवं वेद के अन्त या शिरोभाग (ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषदों) के सूक्ष्म तत्वों का दिग्दर्शन कराने से, वेदान्त दर्शन कहते हैं। जैमिनि ने वेद का कर्मकाण्ड पूर्वमीमांसा सूत्रों में व्यक्त किया है। उत्तर भाग श्रुतियों की (उपासना एवं ज्ञानकाण्ड) मीमांसा करनेवाला उत्तरमीमांसा है (वेदान्तदर्शन या ब्रह्मसूत्र की मीमांसा)। इस ब्रह्मसूत्र पर सभी संप्रदायों के आचार्यों ने भाष्य लिखा है और अपने-अपने सिद्धांत को प्रतिपाद्य बनाने की चेष्टा की है।

नाना प्रकार के वादों का स्रोत वेद से है। संहिता में इन भिन्न-भिन्न वादों की विचारधाराएँ या आध्यात्मिक अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं जो आरण्यक एवं उपनिषदों में भी पायी जाती हैं। कालान्तर में इसने एक पुलकाय महत् ग्रंथ का रूप ले लिया। कालान्तर में उपनिषद सिद्धांतों में परस्पर विरोध प्रतीत होने लगा और ये सब विचारधाराएँ अनुभूतियाँ और तार्किक युक्तियों से किसी एक को अपना कर भिन्न-भिन्न दर्शनों का संकलन किया गया था। इन विरोधाभासों का परिहार करके तथा एकवाक्यता करने के उद्देश्य से श्री बादरायण (श्री व्यास) ने सूत्रों की रचना की थी। ये सब सूत्र समस्त वेदांत का रूप प्रस्तुत करते हैं और समस्त उपनिषदों का सूत्रों द्वारा ब्रह्मपरक तात्पर्य होने से इसका नाम ब्रह्मसूत्र हुआ। बादरायण शब्द पुराण काल से श्री वेदव्यास (कृष्णद्वैपायन) के लिए व्यवहृत होता आया है। आचार्य शंकर ने श्री बादरायण को 'भगवान' शब्द से संबोधित किया है और सूत्रकार भी कहा है। भास्कर एवं यमुनाचार्य ने भी बादरायण को सूत्रकार कहा है। गीता में (13/4) ब्रह्मसूत्र पद की व्याख्या करते हुए आचार्य बादरायण का नाम नहीं लेते परन्तु कहते हैं— 'ब्रह्मणः सूचकानि वाक्यानि ब्रह्मसूत्राणि तैः पदैः गम्यते ज्ञायते इति' "संशयरहित निश्चित ज्ञान उत्पन्न करनेवाले विनिश्चित और युक्तियुक्त ब्रह्मसूत्र के पदों से भी कहा गया है। जो वाक्य ब्रह्म के सूचक हैं उनका नाम 'ब्रह्मसूत्र' है, उनके द्वारा ब्रह्म पाया जाता है, जाना जाता है, इसीलिए उनको पद कहते हैं, उनसे भी क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का तत्व कहा गया है।" यह आचार्य शंकर का गीताभाष्य कथन है। यहीं संयुक्त पद ' ब्रह्मसूत्र के पदों' का स्पष्ट अर्थ बादरायण रचित 'ब्रह्मसूत्र' है जो 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' सूत्र से प्रारम्भ होता है और इसी ब्रह्मसूत्र ग्रंथ में आगे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का तत्व भी कहा गया है। परन्तु रामानुजाचार्य एवं मध्वाचार्य बादरायण सूत्र को निर्देशित करते हैं।

शंकराचार्य (शारीरक भाष्य), भास्कर (भास्कर भाष्य), रामानुज (श्री भाष्य), मध्वाचार्य (पूर्णप्रज्ञ भाष्य), निम्बार्क (वेदान्त पारिजात), श्री कण्ठ (शैव भाष्य), श्रीपति

(श्रीकर भाष्य), वल्लभाचार्य (अणुभाष्य), विज्ञान भिक्षु (विज्ञानामृत), बलदेव (गोविन्द भाष्य), पद्मपादाचार्य (पंचपादिका), वाचस्पति मिश्र (भामती), आदि सब ने बादरायण सूत्र को व्यासरचित ही माना है। 'व्यासतात्पर्यनिर्णय' (विद्वान ऐयण्ण द्वारा रचित) में विष्णु पुराण श्लोक उद्धत कर कहते हैं कि पराशरव्यास (बादरायण) ने ब्रह्मसूत्र की रचना की है।

कुछ आधुनिक विद्वान इस ब्रह्मसूत्र में सांख्य, वैशेषिक, योग, बौद्ध, जैन, पाशुपत, पाञ्चरात्र आदि मतों की आलोचना देखकर इस ग्रंथ को अर्वाचीन बताने का साहस करते हैं और बादरायण को वेदव्यास से भिन्न मानते हैं तथा मूल बौद्धमत में कालान्तर में ही भिन्न-भिन्न वाद या शाखाएँ बनाकर प्रचार होने लगा कि संभवतः बादरायण ने सूत्रों की रचना इसी काल मे की हो। परन्तु यह नितान्त भ्रमपूर्ण है।

(क) ब्रह्मसूत्र में जिन मतों की आलोचना की गयी है, वे सब प्रवाह रूप से अनादि काल से चले आ रहे हैं। वैदिक काल से सद्वाद और असद्वाद (आस्तिक-नास्तिक) का विवाद चला आ रहा है। नश्वर एवं नित्य; क्षणिक या नित्य; प्रधान कारण वाद (सांख्य); जगत् का कारण या परब्रह्म परमेश्वर (जगत् का कारण); असत् से सत् या सत् से असत् या उभय (अप्रकट से प्रकट आदि वाद); परमाणुवाद की मान्यता (वैशेषिक नैयायिक) के विरुद्ध श्रुतिवाक्य या तार्किक युक्तिवाद; विज्ञानवाद (बौद्ध) की मान्यता के विरुद्ध श्रुतिवाक्य एवं युक्तिवाद, क्षणिक असत्यवाद (बौद्ध) के प्रति श्रुतिवाक्य; अभाव से भाव की उत्पत्तिवाद के विरोध में श्रुतिवाक्य; स्मृतियों में भी अनेक जगह इन उपर्युक्त वादों की पुष्टि या निराकरण; आदि कुछ विचारधाराएँ प्रवाह रूप से अनादि काल से चली आ रही हैं। नाना प्रकार के श्रुति-स्मृति वाक्यों द्वारा भी पृथक-पृथक विवेचनापूर्वक इन नाना प्रकार के वादों की विचारधारा प्रकटित होती आ रही है। इन प्रवाह रूप से चले आते हुए विचारों में से किसी एक को अपनाकर कांलान्तर में महान पुरुषों द्वारा भिन्न-भिन्न दर्शनों का प्रचलन हुआ है।

गौतम ने प्रमाण द्वारा अर्थ परीक्षण किया, कणाद ने शब्दार्थ स्वरूप का निर्णय किया, कपिल ने उपनिषद् सिद्धान्तों की शास्त्रीय विवेचना की, पतञ्जलि ने अपने 195 योगसूत्रों द्वारा शरीर विज्ञान एवं सूक्ष्म मनोविज्ञान की विवेचना की और जैमिनि ने बारह अध्यायों में 909 अधिकरणों में विभक्त कर 2644 सूत्रों द्वारा शब्द मीमांसा की और कर्म पर बहुत जोर दिया। परन्तु सूत्रकार बादरायण व्यास के वेदान्तदर्शन में देखा जाता है कि भिन्न-भिन्न विचारधाराओं में जो पारस्परिक अनैक्य है, उसे मिटाकर एकवाक्यता लायी गयी है एवं चरम सिद्धान्त का निदर्शन कराया गया है एवं अचिन्त्य सूक्ष्म तत्वों का दिग्दर्शन कराया गया है। इसी प्रकार बौद्ध और जैनमत के प्रकाण्ड विद्वानों ने भी इस प्रवाह रूप में चली आती हुई विचारधाराओं में से कुछ आध्यात्मिक अनुभूतियों को, तार्किक युक्तियों को, उपनिषद एवं स्मृतिवाक्यों को, अपनाकर अपने-अपने सिद्धान्तों की पुष्टि में उन्हें संकलित किया। ये सब कालान्तर के क्रियाकलाप हैं।

(ख) सूत्रकार ने कहीं भी अपने सूत्रों के सांख्य, वैशेषिक, नैयायिक, बौद्ध, जैन, आदि मतों के आचार्यों व महानों का नाम उल्लेख नहीं किया है। उन्होंने केवल प्रधान कारणवाद, अणुकारणवाद, विज्ञानवाद, क्षणिकवाद आदि सिद्धान्तों की ही समीक्षा की है। कालान्तर में भाष्यकारों ने अपने भाष्यों में आचार्यों व महानपुरुषों का नाम लिया एवं दर्शनों का भी नाम लिया है। ये सब प्रवाहरूप में चली आती हुई विचारधाराएँ आध्यात्मिक अनुभूतियाँ, तार्किक युक्तियाँ आदि हैं। इनमें कई विरोधाभास जैसी विचारधाराएँ भी हैं। जब तक उक्त वादों के प्रवर्तक का नाम न लिया जाय एवं दर्शनों का नाम न लिया जाय, तब तक किस कारण कहा जाय कि यह ब्रह्मसूत्र अर्वाचीन काल की रचना है। बादरायण ने दूसरे अध्याय में इन विरोधाभासों एवं तार्किक युक्तियों का निराकरण किया है। सूत्रों में विरोधी उपनिषद वाक्यों का समन्वय भी किया है। सूत्रों में बादरी, औडुलोमि, जैमिनि, आश्मरथ, काशकृत्स्न, आत्रेय आदि नाम आये हैं जो अत्यन्त प्राचीन हैं और इनमें से कितनों का नाम मीमांसा सूत्रों में भी है, अतः ब्रह्मसूत्र ग्रंथ प्राचीन है।

(ग) गीता में (13/4) हेतुमद् विशेषण सहित 'ब्रह्मसूत्र' का नाम आता है। आचार्य शंकर भाष्य में कहते हैं 'ब्रह्मणः सूचकानि वाक्यानि ब्रह्मसूत्राणि, तैः पदैः गम्यते ज्ञायते इति'। इससे भी इसकी परम प्राचीनता सिद्ध होती है। बादरायण नामशब्द पुराण काल से (देखिये विष्णुपुराण-पुराण उत्पत्यादि कथन में) श्री वेदव्यास के लिए व्यवहृत होता आया है। अतः बादरायण ब्रह्मसूत्र श्री व्यास की रचना है।

(घ) पाणिनि ने पराशर्यव्यास द्वारा रचित 'भिक्षुसूत्र' की चर्चा अपने सूत्रों में की है ('पराशर्य शिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः) यह ग्रंथ अब उपलब्ध नहीं है। अनुसन्धान करनेवाले विद्वानों की मान्यता है कि संभवतः 'भिक्षुसूत्र' एवं 'ब्रह्मसूत्र' अभिन्न रहा हो। अनुमान है कि ब्रह्मसूत्र ही भिक्षुसूत्र (अष्टाध्यायी में उल्लिखित है) के नाम से उस समय में प्रख्यात रहा हो। यह कहा जा सकता है कि ब्रह्मसूत्र ग्रंथ बुद्धकाल के अतिपूर्व काल का ग्रंथ है।

कांची कामकोटि मठ प्रचारक एवं कुछ अन्य विद्वानों का कहना है कि 'ईसा की दूसरी-तीसरी शताब्दी में ईसाई धर्म केरल में आकर जम चुका था और उसका प्रचार भी हुआ था (सेंट थामस के प्रथम शताब्दी में केरल पहुँचने की कथा के आधार पर)। इसी प्रकार कहा जाता है कि छठवीं-सातवीं शताब्दी में मुसलमानों का धर्म दूर दक्षिण-पश्चिम सीमा में प्रचारित था। यदि आठवीं शताब्दी में आचार्य शंकर का अविर्भाव हुआ हो तो क्यों नहीं उन्होंने इन मतों का खण्डन किया ? अतः आचार्य शंकर का काल ईसा पूर्व का है'। आचार्य शंकर का एक मात्र प्रश्न था कि वेद और धर्म जो अवैदिकता के पंक में धँसा जा रहा था, उसका उद्धार किस प्रकार किया जाय ? वेदविरुद्ध सम्प्रदायों से भारतवर्ष अधिकृत था और इसे किस प्रकार बचाया जाय ? वेद, उपनिषद, गीता के वाक्यों का कुअर्थ निकालकर वेदविरुद्ध प्रचार भी था। सनातन वैदिक धर्म में नूतन आये हुए अकर्म, अवैदिक, पाखण्डप्रधान अनाचार मतों का नाश करने, जीर्ण हुए वैदिक मत का उत्थान करने, उसकी महत्ता बढ़ाने के लिए आचार्य शंकर का जन्म हुआ था। उस

समय में अपने वैदिक सनातन धर्म की रक्षा करना ही उनका एक मात्र कार्य था। सम्प्रदायवाद, अज्ञान और अन्ध विश्वास, अधर्म कृतियों से समाज का विखण्डन, व्यभिचारपूर्ण आमोद-प्रमोद भगवान की पूजा, हर सम्प्रदाय और धर्म एक दूसरे से लड़ रहे थे और रक्तपात हो रहा था, आदि बुराइयाँ जो धर्म के नाम से चल रही थीं, इन सब का नाश करना ही उनका कार्य था। ऐसी परिस्थिति आने का कारण न तो ईसाई धर्म था और न इसलाम धर्म। अतः आचार्य शंकर ने इन मतों का खण्डन नहीं किया था और ये धर्म भारत के बाहर से यहाँ आकर प्रचारित हो रहे थे तथा इन धर्मों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था।

मैंने जो भी कुछ लिखा है सो सब विषय अनेक मुद्रित एवं हस्तलिखित अमुद्रित पुस्तकों से एवं अनुसन्धान-विद्वानों की कृतियों से तथा अन्य भाषा में अनुवादित पुस्तकों से किसी संकोच के बिना यथेष्ट रूप में लिया है और कई जगह उनका उद्धरण भी किया है। संग्रहकर्ता रूप में मैंने सम्पादक का काम किया है। अतः मैं इन सभी ग्रंथकर्ताओं, अनुवादकों एवं अनुसन्धान विद्वानों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। अल्पज्ञता के कारण इनमें त्रुटियाँ रह जाना स्वाभाविक है और कृपालु पाठकों से क्षमा प्रार्थना करते हैं। इस पुस्तक की हस्तलिपि प्रति तैयार होने के पश्चात् मुझे एक पुस्तक 'Shankara's Date' नामक (रचयिता श्री आर. एम्. उमेश, मदरास) प्राप्त हुई। और मैंने इस पुस्तक से कुछ विषय उद्धृत किया है। यदि पाठकगण आचार्य शंकर के आविर्भाव काल के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहते हों तो यह निवेदन है कि वे इस पुस्तक को पढ़ें। रचयिता को अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए मैं धन्यवाद देना चाहूँगा।

आद्य शंकराचार्य के समय की अपेक्षा आज हमारा धर्म अव्यवस्थित हो गया है। आस्था संकट में पड़ गयी है। अनास्था के कारण हमारी भविष्य की आशाएँ धुँधला गयी हैं और हमारे तरुण अवघात पर सन्नद्ध हो गये हैं। भारतीय संस्कृति और साधना रसातल को जा रही है। सारा भारत अपने आदर्श को भूल कर विदेशी सभ्यता में फँस रहा है। धार्मिक और आध्यात्मिक ही नहीं, चारित्रिक पतन भी अन्तिम सीमा पर पहुँच रहा है। इस समय चारों ओर अनेकों राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक वादों का ऐसा भयंकर जाल फैल गया है एवं उद्योग और विज्ञान द्वारा बाह्य आडम्बरों का तथा विषय-वासना-भोगों की साधनाएँ प्राप्त हुई हैं जिनके कारण जिन महान दार्शनिक वादों ने हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को चिन्तनशील एवं विचारशील बनाकर आध्यात्मिक उत्कृष्टता की ओर प्रवृत्त कर रखा था, उनकी चर्चा ही बन्द हो गयी है। इसी के परिणामस्वरूप आज चारों ओर राग-द्वेष, मद-मात्सर्य, हिंसा-प्रतिहिंसा तथा पशुता व्यवहार का प्रबल प्रवाह बह रहा है एवं मनुष्य-जाति की भयानक दुर्दशा हमारे सामने प्रत्यक्ष हो रही है। जड भोग-विलास की प्रबलता से धार्मिक जगत में बड़ा अनर्थ होने लगा है। उच्चतर तत्वबोध अत्यधिक कठिन है। धर्म के नाम पर आज जगत् में दानवी लीला का ताण्डव नृत्य हो रहा है। विषयासक्ति और कामना ने ज्ञान को ढ़क कर मनुष्यत्व के पद से गिराने का प्रयत्न किया है। परमात्मा के यथार्थ तत्व को भूलकर आज ऊपर की बातों में ही लड़ रहे है। सभी लोग धर्म, सिद्धांत व्यवहार में विभाजित हैं और धर्म के केवल व्यावहारिक

भाग को ग्रहण कर रहे हैं। बाह्य भोगों से या भौतिक और बाह्य विज्ञान से मनुष्य को आत्यन्तिक और सच्ची शांति कभी नहीं मिल सकती। आत्मस्वरूप के सम्यक ज्ञान से ही मनुष्य शोक-मोह-दुखादि से निवृत्त होकर शाश्वती शान्ति को प्राप्त होता है। उसे किसी अनन्त और सुखस्वरूप सत्ता की शरण लेनी पड़ेगी। ऐसी दशा में आवश्यक हो गया है कि पुनः भगवान श्री शंकराचार्य के ग्रंथों का, विचारों का एवं जीवन-क्रियाकलापों के आदर्शों का अवलम्बन कर प्रोत्साहन दें। आचार्य शंकर ने अपने उपदेशों द्वारा भूले-भटके और अज्ञानी मनुष्यों को ज्ञानदान दिया है। इह—पर सुख-शान्ति एवं नित्यानन्द का मार्ग दिखाया है ताकि नैतिक, आध्यात्मिक तथा बौद्धिक उत्थान हो। सामाजिक और राजनैतिक भविष्य के निर्माण में उनका स्थान ऊँचा है। जब तक हम अपने सनातन धर्म को नहीं समझेंगे या धर्म के वास्तविक स्वरूप को नहीं अपनायेंगे तब तक हमारी यही दुर्गति होगी। आध्यात्मिक ज्ञान से समस्त प्राणियों में एक आत्मा का दर्शन करते हुए यदि भारत देश आगे बढ़ा तो लोगों की श्रद्धा धर्म के प्रति अक्षुण्ण रहेगी। आचार्य शंकर के कारण अनेक धर्मों में भ्रातृभाव आया और आध्यात्मिक लोकतंत्र स्थापित हुआ। भारत में हर धर्म दूसरे धर्म के सिद्धान्तों का समादार करता है। इसका श्रेय आचार्य शंकर के अद्वैतवाद सिद्धान्तों का प्रचार एवं प्रसार है। प्रार्थना है 'भद्रं नो अपि वातय मनः'। कृपया आप भगवान हमारे मनबुद्धि को उचित धार्मिक एवं मंगलजनक शुभ की तरफ मार्गदर्शन करायें।

भौतिक दृष्टि से राजकीय क्षेत्र में राष्ट्र स्वंतत्र हुआ है पर उसमें आध्यात्मिक नींव पर प्राणप्रतिष्ठा-कार्य अभी तक नहीं हुआ है। राष्ट्र की आत्मा को रचनात्मक कार्य करते हुए प्रबुद्ध करना आवश्यक है। पूर्वकाल में आद्य शङ्कराचार्य ने यही राष्ट्रीय काम आध्यात्मिक-सांस्कृतिक भित्ति पर प्रतिष्ठित किया था और अब इनकी परम्परा में आये चतुराम्नाय मठों के आचार्य वर्गों का क़र्तव्य है कि वे इस काम को अब सम्पन्न करें। ये चार आध्यात्मिक धर्मपीठ भारत के अपने और राष्ट्रीय हैं और इनके मठाधीश राष्ट्रीय संन्यासी हैं, धर्म संयुक्त सत्ता विधानों के अधिकारी, मार्गदर्शक हैं। इनका सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र के लिए धरोहर है। शुभम्।

(ख) समीक्षा

1. भूमिका

भारतीय इतिहास के तिथि काल-क्रम की अनेक समस्याएँ हैं। इनमें एक महत्वपूर्ण कालक्रम का सम्बन्ध महान विभूति, उच्चदार्शनिक, अद्वैतमीमांसा के पुनरुद्धारक, धर्मयुगप्रवर्तक, आद्य श्री शंकराचार्य से है। इस विवाद में काल संबंधी प्रतिष्ठा का प्रश्न उठा है क्योंकि भारतीय इतिहास में श्री शंकराचार्य का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। नाना मतों का प्रतिपादन भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में है। असंभ्रान्त अन्तिम निर्णय पर कोई सिद्धान्त नहीं पहुँच सका। बहुतेरे विद्वानों ने बाह्य प्रमाणों के आधार पर आनुमानिक दृष्टिकोण द्वारा निर्णय देते हुए (जो सब अन्तरंगप्रमाणों के विरुद्ध भी है) अवतारी, धर्मयुगप्रवर्तक आचार्य शंकर के जन्मकाल की समस्या को हल किया है। सबसे प्रधान प्रमाण आन्तरिक प्रमाण हैं जो आचार्य शंकर की कृतियों के द्वारा प्राप्त होते हैं। बाह्य प्रमाण सब आन्तरिक प्रमाणों के अनुकूल तथा उनकी पुष्टि के लिए होना चाहिये। इसके अन्य प्रमाण जो आन्तरिक प्रमाण के विरुद्ध होंगे, वे सब अग्राह्य हैं। इन आन्तरिक प्रमाणों के उपलब्ध होते हुए भी इनको तिरस्कृत करके, अन्य बाह्य और पुष्टि प्रमाणों पर निर्भर कर अनुमान करते हुए निर्णय करना न्याय और उचित नहीं है। तथा आचार्य शंकर को मिथ्यावादी होने का और प्रस्थानत्रय भाष्यों का भाष्यकार न होने का दोषारोपण करना होगा, जो मेरी समझ में महापाप है। आचार्य शंकर के ग्रंथों की अन्तरंग परीक्षा और समीक्षा करने से यथार्थता सिद्ध की जा सकती है। अब हम आचार्य शंकर के जीवनकाल के समय का निर्धारण करने के लिए उपलब्ध साक्ष्य (आन्तरिक, बाह्य एवं पुष्टि) की विवेचना करेंगे।

कुछ विद्वानों का अभिप्राय उल्लेख किया जाता है, यथा—

(क) 1. कहे जानेवाले 'बृहत्छंकरविजय' चित्सुखाचार्य (अनुपलब्ध एवं अश्रुत कोटि का ग्रंथ) में कहा गया है "युधिष्ठिर शक 2662 वें वर्ष में 32 वर्ष की अवस्था में आचार्य शंकर का निर्याण हुआ।" मनगढ़न्त कुछ श्लोकों के अलावा इस पुस्तक के बारे में कुछ नहीं मालूम पड़ता है। विवादास्पद विषयों में ही इन श्लोकों का उद्धरण किया गया है। इस कथित पुस्तक में (कुछ श्लोक उद्धृत) भी कहा है कि कुमारिल भट्टने 24 वें तीर्थंकर महावीर से आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त की थी और आप जैनमत सिद्धान्तो से पूर्ण अवगत थे। इसी बात की पुष्टि जिनविजय नामक पुस्तक से भी होती है। अन्य प्रामाणिक ग्रंथों में जो उपलब्ध हैं उनमें कहा है कि कुमारिल भट्ट ने बौद्धमत आचार्यों एवं प्रकाण्ड विद्वानों से शिक्षा प्राप्त की थी। कुम्भकोण कांचीमठ के प्रचारकों ने एक कल्पित मनगढ़न्त श्लोक, अदृष्ट व अप्राप्य ग्रंथ का नाम लेकर, उद्धरण किया है, यथा "तिष्ये प्रयात्यनलशेवधि बाण नेत्रे "अर्थात 2593 कलि अब्द या 509 ईसा पूर्व। इस प्रचार के साथ और एक नवीन युधिष्ठिर अब्द का नाम लेते हैं और कहते हैं कि आचार्य शंकर का जन्म 2631/32

युधिष्ठिर शक में हुआ था। यह युधिष्ठिर शक उस समय के साहित्य सम्बन्धी काव्य में, शिलालेख या मुद्रा लेख में, कालनिर्णय विद्या प्रयोग में प्रचलित नहीं था। यह अर्वाचीन काल का है।

2. 'जिनविजय' में आचार्य का निर्याण काल युधिष्ठिर शक 2159 का दिया है। इस पुस्तक के बारे में कड़ी खोज की गयी और आश्चर्य है कि (दिगम्बर एवं श्वेताम्बर) के प्रसिद्ध विद्वानों ने इस ग्रंथ का नाम भी नहीं सुना है और यह ग्रंथ न किसी पुस्तकालय में प्राप्त होता है और न किसी सूची में। यह ग्रंथ अगोचर, अश्रुत एवं अनुपलब्ध कोटि का है। दक्षिण भारत के कुछ प्रचारक विद्वानों ने अपने मनगढ़न्त सिद्धान्तों का प्रचार और प्रसार करने के लिए कुछ स्वकल्पित श्लोकों का निर्देश किया है। इन श्लोकों के अलावा वे इस ग्रंथ के बारे में कुछ नहीं जानते।

3. 'शिवरहस्य' में कहा है कि कलियुग के दो हजार वर्ष व्यतीत होने पर आचार्य शंकर का आविर्भाव हुआ। यह कहा जाता है कि कलियुग का प्रारम्भ काल 3102 ईसा पूर्व का है। अर्थात् आचार्य शंकर का आविर्भाव काल 1102 ईसा पूर्व का होता है।

(ख) जनार्दन रामचन्द्र–610 ईसा पूर्व; कुम्भकोण–कांची कामकोटि मठ–509–508 ईसा पूर्व या 482 या 476 ईसा पूर्व; डॉ० विन्सेन्ट–60 वर्ष श्री बुद्धदेव के पश्चात्; निखिलनाथराय–476 ईसा पूर्व; भास्करराय–49 ईसा पूर्व; पूर्वाम्नाय गोवर्धन मठ एवं पश्चिमाम्नाय द्वारका शारदा मठ–युधिष्ठिर शक 2631; पश्चिमाम्नाय द्वारका मठाधीश जगद्गुरु शंकराचार्य (1877-1900 ई०) द्वारा रचित ग्रंथ 'विमर्श' में सम्राट् सुधन्वा का ताम्रशासन, पूर्वाम्नाय गोवर्धन मठ से प्रकाशित (1966) 'यतिदण्डैश्वर्य विधानम्' नामक ग्रंथ, 'मठानुशासन' उत्तराम्नाय ज्योतिर्मठ धर्मविभाग द्वारा प्रकाशित (1946); टी. एस. नारायण शास्त्रि रचित पुस्तक 'दि एज आफ शंकर', मदरास, 1916 (कामकोटि मठ प्रचारक) एवं ए. नटराज अय्यर व एस. लक्ष्मीनरसिंह शास्त्री रचित पुस्तक ' दि ट्रेडिशनल एज आफ शंकर ऐण्ड दि मठ्स', मदरास, 1962. (उपर्युक्त नारायण शास्त्री की पुस्तक पर आधारित), ये दोनों कांचीमठ के 509-508 ईसा पूर्व काल की पुष्टि करते हैं; डॉ० त्रिवेदी रचित 'इन्डियन क्रोनलाजी'; विद्याभास्कर उदयवीर शास्त्री रचित 'एज आफ शंकर' (1981); के. जी. नटेश शास्त्री का लेख 'जिज्ञासा' में, कांचीमठ के 509 ईसा पूर्व का अनुमोदन करते हैं। ये सब मठ–प्रचारक पुस्तकें हैं। डॉ० के. कुञ्जुण्णिराजा कहते हैं कि पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्वकाल निर्णय करना निरर्थक एवं विवेकशून्यता है और विचार-विमर्श करने योग्य नहीं है। (Ref. 'Brahma Vidya', The Adayar Library Bulletin, vol, 24, 1960, writes, 'According to some orthodox tradition, the date of Sankaracharya is the fifth Century B. C. (Ref. T. S. Narayana Sastry. . .'The age of Sankar' Madras, 1916). Such an obviously absurd date does not deserve any consideration at all'). कांची कामकोटि मठ या उससे अनुमोदित या प्रचारकों द्वारा जितना प्रकाशन अभी तक हुआ है उन सब नये दावों का आधार लेकर कांची काम कोटि मठ द्वारा आद्य श्री शंकराचार्य

का एक नया जीवनचरित्र निर्माण किया गया है जिसे अब नवीन प्रचार पुस्तकों द्वारा प्रचारित किया जा रहा है। इन सब विषयों का प्रकाशन 'आदि शंकर' (आंग्ल भाषा) नामक पुस्तक में किया गया है, जिसके मुख्य संपादक एवं लेखक श्री एस. डी. कुलकर्णी (थाना बम्बई) हैं। आचार्य के चरित्र विषय में कांची कामकोटि मठ का स्वत्व-दावा जो सब निराधार, अप्रामाणिक एवं विज्ञों से निराकृत है, वह सब विषय अनेक पुस्तकों द्वारा खण्डन किया गया है। इन खण्डनों का उत्तर न देते हुए उक्त मठ के लोग निराधार विषयों को बार–बार प्रकाशित कर रहे हैं। उपर्युक्त पुस्तक में दिये गये अप्रामाणिक विषयों का खण्डन 'श्री मज्जगद्गुरु शंकर मठ विमर्श' (700 पृ०), 'काशी में कुम्भकोणमठविषयक विवाद' (300 पृ०.), 'कांची कामकोटि मठ–ए मिथ' एवं ' दि ट्रुथ अबौट दि कुम्भकोणम् मठ', कामकोटि शतकोटि, आदि पुस्तकों में किया गया है। निष्पक्षपात भावनाओं से इन पुस्तकों को पढ़ा जाय तो यथार्थ व सत्य विषय प्रकट हो जायगा।

(ग) भगवानलाल इन्द्र जी तीसरी शताब्दी ई० (यह निर्णय नेपाल महाराजा श्री वृषदेव वर्मन काल के अनुसार दिया गया है परन्तु–डॉ० फ्लीट राजा वृषदेव का काल 630-650 ई० का बतलाते हैं। 'केरळोत्पत्ति' 400 ई० (यह निर्णय चेरुमान पेरुमाळ के काल के अनुसार दिया गया है परन्तु चेरुमान का समय नवम शताब्दी का है–कब्र पर लगे शिलालेख के अनुसार।), मेकन्जी–500 ई०, एन्, भाष्याचार्य–छठवीं शताब्दी ई०।

(घ) टी, फौकस–650-670 ई०; डॉ० बर्नल 652-680 ई० , अन्यत्र 700 ई०; डॉ० टी. आर. चिन्तामणि–655 ई०; डि. आर. भण्डारकर 680 ई०; आर. जी. भण्डारकर ने प्रथम बार चतुर्थ शताब्दी बतलाया और अनुसन्धान के पश्चात् 680 ई० का निर्णय दिया; डॉ० राजेन्द्र नाथ घोष (श्री स्वामी चिद्घनानन्द पुरी) 686 ई० ; डॉ० एच. के. सेन–686 ई०; डॉ० त्रिपाठी–686 ई०; के. टि. तेलंग–550-590 ई० (पूर्ण वर्मा का नाम ग्रन्थों में उल्लेख होने से) पश्चात् अनुसन्धान करनेपर 688 ई० का निर्णय दिया; बाल गंगाधर तिलक 688 ई० एवं अन्यत्र 788 ई० का भी निर्देश किया है; मानियर–विलियम्–650-740 ई०; लूईस राइस ने–पूर्व में 737 ई०, 745 ई० एवं 769 ई० का भिन्न काल बतलाया और अन्तिम निर्णय 677 ई० का दिया; प्रो० हजमे नाकामुरा–सातवीं/आठवीं (प्रारम्भ) शताब्दी, अलेन थ्राशर–700 ई० या इसके पूर्व समीप काल, बलदेव उपाध्याय (वाराणसी)–सातवीं शताब्दी का अन्त मानते हैं।

महानुभाव पंथ के 'दर्शन प्रकाश' ग्रंथ में जो 1638 ई० में रचा गया था, उसमें 'शंकरपद्धति' नामक किसी एक अति प्राचीन ग्रंथ से उद्धरण है, यथा– 'युग्मपयोधि रसामित शाके रौद्रक वत्सर ऊर्जक मासे, वासर ईज्य उताचल माने कृष्णतिथौ दिवसे शुभयोगे, शंकर लोकमगान्निजदेहं हेमगिरौ प्रविहाय हठेन।' 642 शक अर्थात् 720 ई० में आचार्य शंकर का निर्याण काल सिद्ध होता है। अतः आचार्य का जन्म काल 688 ई० में होना निश्चित होता है।

(ङ) फ्लीट, लोगन, बुहुलर, कीत, मेक्डोनाल्ड, जेकब, बेवर, बार्त, मैक्समुलर, टील, विन्टरनिट्ज, कावली रामस्वामी, कृष्णस्वामी, यज्ञेश्वर शास्त्री, नीलकष्ठ भट्ट, कृष्ण

ब्रह्मानन्द, उल्लूर एस. परमेश्वर अय्यर, शंकर गिरि, उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, गौरीशंकर ओझा, रूपकलाजी, के. बि. पाठक, नीलकष्ठ शास्त्री, एस. के. अयंङ्गार, आदि अनेक विद्वानों ने 788 ई० का निर्णय दिया है। प्रायः इन सब ने बेलगाँव गोविन्द भट्ट यार्लेकर के यहाँ से प्राप्त पुस्तिका के आधार पर जन्मकाल का निर्णय दिया है।

(च) कुछ अनुसन्धानकर्त्ता विद्वानों का अभिप्राय इस प्रकार का भी है—बौद्धपण्डित कमलशील ने कहा है कि आचार्य शंकर ने सूत्र भाष्य (2-2-28) में दिङ्नाग के आलम्बन परीक्षा से उद्धृत किया है। दिङ्नाग का समय वसुबन्धु एवं भर्तृहरि के साथ जुड़ा हुआ है। दिङ्नाग के टीकाकार धर्मकीर्ति का श्लोक आचार्य शंकर ने उद्धृत किया है, ' यथा—अभिन्नो हि बुद्ध्यात्मा' (उपदेश साहस्री), यह धर्मकीर्ति के 'प्रमाणविनिश्चय'से लिया गया है। चीनी यात्री ईत्सिंग, जो भारत में 690 ई० में था, उसने धर्मकीर्ति के नाम का उल्लेख किया है। धर्मकीर्ति का समय सातवीं शताब्दी पूर्वार्ध या कुछ काल इसके पूर्व का था। आचार्य शंकर इसके पश्चात् काल के हैं। दिङ्नाग का समय पाँचवीं शताब्दी का है। कुमारिल भट्ट का काल सातवीं शताब्दी उत्तरार्ध या अन्त का है। आचार्य शंकर भी इसी समय विद्यमान थे। विद्यानन्द (जिनसेन का विद्यागुरु एवं जैन हरिवंश 783 ई० का लेखक) ने सूरेश्वराचार्य द्वारा रचित वृ. उप भाष्य वार्तिक से श्लोक उद्धृत किया है (आत्मापि सदिदं ब्रह्म मोहात् सद्वितीयतयेशति)। अतः जिनसेन से 100 वर्ष का पूर्व समय आचार्य शंकर एवं सुरेवश्वराचार्य का था।

(छ) विन्डिष्मान्, लासन, बेवर, मानिंग, कोवेल, गफ, फुलक्स, कोलब्रूक, विल्सन, अक्षयकुमार आदि विद्वानों ने आठवीं/नवीं ई० बतलाया है। रामावतार शर्मा—779-803 ई०; हाग्सन्—800 ई०; सत्येन्द्रनाथ ठाकुर, पिच्चु अय्यर, एस. बी. वेकटेशन—805 ई०; प्रो० कीत—800-825 ई०; टेलर—900 ई०।

(ज) दक्षिणाम्नाय शारदापीठ— शृंगेरीमठ, वि. सूर्यनारायण राव, डॉ० यदुनाथ सरकार, लूईस रईस आदि ने 'विक्रमादित्य राज्यकाल के चौदहवें वर्ष में आचार्य शंकर का कालटी क्षेत्र में आविर्भाव काल' कहा है। शृंगेरीमठ के कुछ विद्वानों ने एवं कुछ स्वतंत्र अनुसन्धानकर्त्ताओं ने शृंगेरीमठ की गुरुपरम्परा की सूची तैयार की थी, जिसमें 'चौदहवें विक्रमाब्द' के स्थान पर उज्जैनी विक्रम संवत को लेकर प्रारम्भ किया था जो ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी काल का था। शृंगेरीमठ के अनुसार श्री सुरेश्वराचार्य का निर्याण काल शालीशक 695 अर्थात 773 ई० का दिया है। अतः उन विद्वानों ने उज्जैनी विक्रम संवत ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी शालीशक 695 का अन्तर जो करीब 800 वर्ष का पड़ता है, इस काल को श्रीसुरेश्वराचार्य का मठाधिपत्य काल बतलाया था। यह उनकी भूल थी। 'विक्रम संवत' का प्राचीन नाम 'मालव संवत' था। आठवें या नवें शतक ई० में इसका नाम 'विक्रम संवत' पड़ा। शृंगेरी के निकट 'वातापि चालुक्यवंशी—दक्षिणापथ राज्य बादामी विक्रम नामधारी राजाओं से सम्बन्ध मानना उचित है जिनके राज्यान्तर्गत शृंगेरीमठ की सीमा थी। तुंगभद्रा नदी के समीप स्थित वातापि नगर (प्रस्तुत बादामी नगर). दक्षिणा पथ चालुक्य वंशी राज्य का केन्द्र था। चालुक्य वंश दक्षिणापथ राज्य के पुलकेशिन् II

के पुत्र विक्रमादित्य I, जिन्हें सत्याश्रय के नाम से भी पुकारा जाता था, के राज्याभिषेक का काल करीब 655 ई० या 670 ई० का बतलाते हैं।

श्री राजेन्द्रनाथ घोष ने स्वयं इस उक्त शृंगेरीमठ गुरु परम्परा की प्राचीन सूची जिसे बत्तीसवें शृंगेरीमठाध्यक्ष ने कुछ विद्वानों से 1875 ई० में तैयार करायी थी, उसकी जाँच-पड़ताल एवं प्रमाणों का उद्धरण शृंगेरीमठ में किया था। श्री सुब्रह्मणिय शास्त्री (मैसूर विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कर्मचारी) ने शृंगेरी मठ के रिकार्ड–दस्तावेजों की जाँच करके, उपलब्ध होनेवाले रिकार्डों की सूची भी तैयार की थी जिसमें उसने भी इस गुरु परम्परा सूची की प्रामाणिकता जाँचकर बतलाया है कि आचार्य शंकर का जन्मकाल 'विक्रमादित्य शासन काल के चौदहवें वर्ष में' था। जुलाई माह 1936 ई० में पं. ज. ग. विश्वनाथ शर्मा (वाराणसी) ने दक्षिणाम्नाय शारदा पीठ–शृंगेरीमठ के जद्गुरु शंकराचार्य अनन्त श्री चन्द्रशेखर भारती महाराज का दर्शन किया और कुछ मठ के रिकार्डों की नकल भी की थी। सतरहवीं शताब्दी में पुनः लिखित एक हस्तलिखित तालपत्रात्मक ग्रंथ से श्री शंकराचार्य महाराज ने एक श्लोक के अर्धभाग को उद्धरण कर लेने को कहा था, जिसका अर्थ है 'विक्रमादित्य ने राज्यारोहण किया और उनके शासन काल के चौदहवें वर्ष में आचार्य का जन्म कालटी अग्रहार में हुआ था।' इस ग्रंथ के अन्तिम पृष्ठ में लिखा था "तालपत्र लिपि बहुजीर्ण होने के कारण पन्द्रहवीं शताब्दी में लिखित मूल ग्रंथ से नकल की गयी है"। शृंगेरीमठ में 500 से भी अधिक तालपत्र में लिखे ग्रंथ सुरक्षित हैं।

दक्षिणापथ चालुक्यवंशी नरेशोंमें सर्वप्रथम विक्रमादित्य I का राज्याधिरोहण काल कुछ ऐतिहासिकों ने 670 ई० का माना है। शिलालेख के अनुसार सत्याश्रय (विक्रमादित्य I) ने 654 ई० में कांची पर चढ़ाई की थी और पल्लवों को हार स्वीकार करनी पड़ी। सत्याश्रय ने 655 ई० में अपने राज्य लौट कर गद्दी छीनने का षड्यंत्र प्रारम्भ कर दिया। 655 ई० से 670 ई० तक का पूर्ण विवरण मालूम नहीं पड़ता। परन्तु ऐतिहासिकों का अनुसन्धानकार्य अब भी जारी है। चालुक्यवंशी राजा पुलकेशिन् द्वितीय के पुत्र सत्याश्रय ने विक्रमादित्य नाम धारण किया। पुलकेशिन II के चार पुत्र थे–आदित्य वर्मा, चन्द्रादित्य, सत्याश्रय (विक्रमादित्य I) और जय सिंह। कुछ ऐतिहासिकों ने छः पुत्र होने की बात कही है। उक्त चारों के साथ रणनाग वर्मा एवं अम्बेरा वर्मा का नाम भी लिखा है। ज्येष्ठ भ्राता के जीवित रहते विक्रमादित्य ने राज्यगद्दी छीन ली। विक्रमादित्य I की उपाधियाँ– सत्याश्रय, राजमल्ल, श्रीवल्लभ, महाराजाधिराज, परमेश्वर, पृथ्वीवल्लभ, आदि थीं। चालुक्यवंशीय काव्यों में विक्रमादित्य का राज्यशासन काल 670 से 681 ई० का कहा है पर ऐतिहासिकों ने इस काल को निस्सन्देह स्वीकार नहीं किया। चालुक्यवंशीय पुलकेशिन II का राज्यारोहण काल 608 ई० था। और आप का राज्याभिषेक 609 में हुआ था। चीनी यात्री हुवन च्वांग 641-642 ई० में पुलकेशिन् II के राज्य काल में आया था। वह लिखता है कि राज्य में 100 संघाराम थे जहाँ 500 से भी अधिक भिक्षु वास करते थे। करीब 100 देव-देवियों के मन्दिर भी थे। 642 ई० में पल्लव नरसिंह बर्मन के हाथ पुलकेशिन II को पराजित होना पड़ा और सम्भव है कि उसकी मृत्यु भी इसी समय हुई हो। 642 ई० से 655 ई० का इतिहास विवरण अधूरा ही प्राप्त हुआ है।

दक्षिणाम्नाय शारदापीठ शृंगेरीमठ का निज सचिव लिखता है— "Nowhere have the Sringeri Math authorities themselves given the B. C. or A. D.

period. The record of the Sringeri Math says that Shankara was born in the 14th year of the reign of Vikramaditya. Compilers wrongly referred this to the era of Vikramaditya of Ujjain, which was originally called Malava Samvat and later, in the eighth century A. D. called the Vikrama Samvat. This took Sankara to the first century B. C. and necessiated the assignment of around 800 years to Sureshwaracharya to agree with the later dates. Mr. L. Rice points out that the reference is not to the Vikramaditya of Ujjain but to the Chalukya king Vikramaditya who ruled in Badami near Sringeri. Historians opine that Chalukya Vikramaditya ascended the throne during the period 655 to 670 A. D.. This reference seems reasonable , as Badami is not very far off from Sringeri. Further, as Sankara and Sureshwara quote Dharmakirti and as Kumarila Bhatta quotes Bhartruhari, the dates of Dharmakirti and Bhartruhari being known, it is incorrect to assign Shankara to the B. C. period and to misquote the Sringeri Math record."

सारांश यथा–शृंगेरीमठ अधिकारियों ने स्वयं कहीं भी आचार्य शंकराचार्य का आविर्भाव काल ईसा पूर्व या ईसा पश्चात् होने का विषय नहीं कहा है। शृंगेरीमठ के ज्ञात प्रमाण (रिकार्ड) से मालूम पड़ता है कि विक्रमादित्य के चौदहवें राज्यभार-काल में आचार्य शंकर का आविर्भाव हुआ था। गुरु परम्परा सूची संग्रहकर्ताओं ने गलती से इसे उज्जैन विक्रमादित्य का काल (विक्रम संवत) मान लिया जो प्राचीन काल में मालव संवत के नाम से प्रसिद्ध था जो आगे चलकर आठवीं शताब्दी में विक्रम संवत के नाम से प्रथित हुआ। इस प्रकार आचार्य शंकर का आविर्भाव काल प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व ले जाना पड़ा है और इसी कारण सुरेश्वराचार्य को 800 वर्ष का माठापत्य काल देना पड़ा, चूँकि सूचीपत्र में आगे आनेवाले महानों का काल सब निर्धारित है। श्री लूईस राईस ने बतलाया कि यह निर्देशित विक्रमादित्य उज्जैन का नहीं था। अपितु शृंगेरी के समीप स्थित बादामी का चालुक्यवंशीय विक्रमादित्य है। ऐतिहासिकों का कहना है कि चालुक्य विक्रमादित्य ने 655 ई० से 670 ई० के बीच राजगद्दी पर आरोहण किया था। यह निर्देश उचित एवं ठीक मालूम पड़ता है क्यों कि बादामी शृंगेरी से दूर नहीं है। इसके अतिरिक्त आचार्य शंकर एवं सुरेश्वराचार्य ने धर्मकीर्ति का निर्देश एवं उद्धरण किया है एवं कुमारिल भट्ट ने भर्तृहरि का उद्धरण किया है तथा धर्मकीर्ति एवं भर्तृहरि का काल ज्ञात है, अतः आचार्य शंकर का आविर्भाव काल ईसा पूर्व ले जाना एवं शृंगेरीमठ रिकार्डों से अशुद्ध उद्धरण करना गलत होगा।

2. आन्तरिक प्रमाण

आचार्य शंकर ने अपने किसी ग्रंथ में रचनाकाल का निर्देश नहीं किया है और साक्षात् शिष्यों के द्वारा रचित ग्रंथों में भी समय का निर्देश नहीं मिलता। समसामयिकों के द्वारा रचित ग्रंथों में शंकराचार्य की जीवनकथा नहीं मिलती, न कोई शिलाशासन या ताम्रशासन ही उपलब्ध हुए हैं। परवर्तीकाल के पण्डितों ने आचार्य की जीवनगाथाएँ लिखी

हैं, उनमें पुराणशैली का प्रभाव विशेष रूप से परिलक्षित होता है परन्तु शंकराचार्य ने कुछ व्यक्तियों का नाम लिया है या उनसे रचित ग्रंथों से गद्य-पद्य उद्धृत किया है या उनके मत या सिद्धांत का उल्लेख किया है या कहीं सूचित किया है तथा दो शहरों का नाम भी लिया है एवं कुछ घटनाओं का वर्णन किया है। इन सबका विवरण नीचे दिया जाता है। प्राचीन परिपाटी के अनुसार ग्रंथों में काल-वर्णन का कोई स्थान नहीं है। अपने जीवन के क्रियाकलापों व घटनाओं के वर्णन आदि से प्रायः विद्वान अलग रहते थे। आत्मश्लाघा से बहुदूर भागते थे। आचार्य शंकर के समान विरक्त एवं महामेधावी महापुरुष भला अपना उल्लेख कैसे कर सकते थे।

1. उपवर्ष

(ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से चौथी शताब्दी ईसा पश्चात् काल)

वेदान्त सूत्रभाष्य (3-3-53) में उल्लेख है। पतंजलि का खण्डन उपवर्ष ने किया है। वैयाकरणों का स्फोटवाद (1-3-28)का खण्डन किया है। पतंजलि का काल ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी का है। आचार्य शंकर ने 'भगवान' शब्द से संबोधित किया है (वर्णा एव तु न शब्दः इति भगवानुपवर्षः) ।आप ने पूर्व मीमांसा एवं वेदान्तसूत्र पर वृत्ति लिखी थी। ' भगवतोपवर्षेण प्रथमे तंत्र आत्मास्तित्वामिधान प्रसक्तौ शारीरके वक्ष्याम इत्युद्धारः कृतः' (3-3-53)। आप का अन्य नाम वृत्तिकार भी है।

2. भर्तृप्रपंच

(ईसापूर्व काल)

बृहदारण्य उपनिषद भाष्य में हास्य रूप में कहा है 'औपनिषदम् मन्यम्।

3. द्रविडाचार्य

(ईसापूर्व काल)

माण्डूक्योपनिषद भाष्य (2-22) में 'आगमवित्' और बृहदारण्य भाष्य मे 'सम्प्रदायवित्' कहा है। टीकाकार आनन्दगिरि ने भी 'सम्प्रदायवित्' कहा है।

4. वृत्तिकार

(ईसापूर्व काल)

सूत्रभाष्य में उल्लेख है (बी. इन्डिका सीरीज, पृष्ठ 67/343)।

5. महायानिकः

(ईसापूर्व काल से 100 ई० का काल)

पद्मपादाचार्य 'पंचपादिका' में कहते हैं कि आचार्य शंकर ने महायान पक्ष का खण्डन किया है—'अतः स एव महायानिकः पक्षः समधिगतः'। विज्ञानवाद महायानों का है। महायानों का काल ईसा पूर्व का है और लगभग 100 ई० में इस पक्ष का प्रभाव और प्रचार अधिक था। कनिष्क ने महासंघ के पश्चात् महायान पक्ष की नींव डाली। नागार्जुन के माध्यमिक बौद्धदर्शन (शून्यवाद) के साथ महायान संप्रदाय का उदय हुआ। अश्वघोष एवं नागार्जुन ही महायान के मूल प्रवर्तक थे। कांची कामकोटि मठ प्रचारकों का कहना

हैं कि महायानिक पक्ष का अर्थ मूल बौद्ध मत है। यह अर्थ गलत है। महायान बौद्धमत की एक शाखा है और बुद्ध के पश्चात् काल में ही इस शाखा का नींव डाली गयी थी।

6. पाशुपत मत.

(पाशुपत मत का प्रारम्भिक काल 100 ई० से 150 ई० था और पुराणों से उद्धरण चतुर्थ शताब्दी ई० का था।)

आचार्य शंकर ने पाशुपत पक्ष का खण्डन सूत्रभाष्य में किया है। सूत्रभाष्य में अनेक जगहों पर पुराणों से उद्धरण किया गया है जो सब व्यासरचित पुराण चतुर्थ शताब्दी ई०, में उपलब्ध प्रतियों से पुनः लिखा गया था। ऐतिहासिक विद्वानों ने प्रमाण सहित सिद्ध किया है कि मूल ग्रंथ व्यासरचित पुराणों के आधार पर पुनः लिखा गया था। गुप्ता काल में पुराणों का प्रचार खूब हुआ। कुछ पुराण उस समय संहिता रूप में थे। आचार्य शंकर ने एक या दो जगह संहिता रूप के पुराण वचन उद्धृत किये हैं। ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं कि लगभग 100 ई० में इस पाशुपत मत का प्रचार प्रारम्भ हुआ। पाशुपत मत सिद्धांतों के प्रवर्तक श्री लकुलीश थे और उनका समय ईसा पश्चात् प्रथम शताब्दी उत्तरार्ध से दूसरी शताब्दी मध्य काल का है।

7. शबरस्वामी

(लगभग दूसरी शताब्दी ईसा पश्चात् काल। कुछ विद्वानों का मत 400 ई० पूर्व काल)

शबरस्वामी का नाम सूत्रभाष्य (बि. इन्डिका सीरिज़ पृष्ठ 58-953) में उल्लेख है। शबरस्वामी ने मीमांसा सूत्रभाष्य में (1-1-5) उपवर्ष का नाम लिया है। आचार्य शंकर ने आप को 'भगवान उपवर्ष' कहा है। पतंजलि का खण्डन उपवर्ष ने किया है एवं आप ने पूर्वमीमांसा तथा वेदान्त सूत्र पर वृत्ति लिखा था। आप का समय ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से चौथी शताब्दी ईसा पश्चात् का है। उपवर्ष काल के पश्चात् शबरस्वामी का समय है।

8. ईश्वर कृष्ण

(दूसरी–तीसरी शताब्दी ई० अन्त)

सूत्रभाष्य दूसरा अध्याय दूसरा पाद। चीनी राजवंश चेन के 557-583 ई० के काल में बौद्ध भिक्खु परमार्थ ने सांख्यकारिका की टीका चीनी भाषा में अनुवाद की थी।

9. सौत्रान्तिक-विज्ञानवाद-शून्यवाद-योगाचार आदि

(दूसरी–तीसरी शताब्दी ई० के पूर्व नहीं, पश्चात् काल)

उपर्युक्त मत बौद्धमत के कुछ वाद व शाखाएँ हैं (माध्यमिका–महायानिक आदि) जिनकी असंग, वसुबन्धु, दिङ्नाग और नागार्जुन द्वारा पुष्टि की गयी थी। आचार्य शंकर ने सूत्रभाष्य में इन वादों का खण्डन किया है। अतः आचार्य शंकर का काल इन ग्रंथ–रचयिताओं के पश्चात् काल का ही होगा। इस विषय का विवरण आगे देखिये 'बाह्य एवं पुष्टि प्रमाण' भाग, संख्या 7 के अन्तर्गत। कांची कामकोटि मठ वालों का वाद है कि आचार्य शंकर ने असंग, दिङ्नाग, धर्मकीर्ति आदि का नाम नहीं लिया है, यद्यपि आचार्य नें सौत्रान्तिक, विज्ञानवाद, शून्यवाद आदि विचारधाराओं का ही खण्डन किया है जो सब इन विद्वानों के पूर्व काल में भी प्रचलित थे। यद्यपि आचार्य शंकर नें इन बौद्धमत विद्वानों का नाम नहीं लिया है तथापि उन बौद्ध विद्वानों से रचित ग्रंथों से उन्हीं का वाक्य उद्धरण

किया है एवं उनके मत का, विचारधाराओं का भी उल्लेख किया है। शांकरभाष्य पर अनेक टीकाकारों ने इन उद्धरणों के मूल ग्रंथों एवं रचयिताओं का नाम भी अपनी टीकाओं में दिया है। इसी पुस्तक में तत्सम्बन्धित विषयों की विवेचना में इन उद्धरणों का विवरण दिया गया है। अतः निस्संदेह कहा जा सकता है कि आचार्य शंकर का नाम इन रचयिताओं के पश्चात् काल का ही होगा।

10. दिङ्नाग

(पाँचवीं शताब्दी ई० उत्तरार्ध एवं छठवीं शताब्दी ई० पूर्वार्ध)

(शान्तरक्षित आठवीं शताब्दी ई०)

सूत्र भाष्य में (नाभाव उपलब्धेः सूत्र 2-2-28) कहा है– 'यत्प्रत्याचक्षाणा अपि बाह्यार्थमेव व्याचक्षते, यदन्तर्ज्ञेय रूपं तद् बहिर्वदवभासते इति, तेऽपि सर्वलोकप्रसिद्धां बहिरवभासमानां संविदं प्रतिलभमानाः प्रत्याख्यातुकामाः बाह्यमर्थं बहिर्वदिति वत्कारं कुर्वन्ति।' आचार्य कमलशील ने शान्तरक्षित द्वारा रचित 'तत्वसंग्रह' की टीका में कारिका को दिङ्नाग द्वारा रचित 'आलम्बन परीक्षा' ग्रंथ (छठवाँ श्लोक) से उद्धृत माना है 'आचार्य दिङ्नागपादैरालम्बन प्रत्ययव्यवस्थार्थमुक्तं यदन्तर्ज्ञेयरूपं तद्बहिर्वदवभासते सोऽर्थो विज्ञान रूपत्वात्र तत्प्रत्ययतापि'। आचार्य शंकर नें विज्ञानवादियों का खण्डन किया है। शान्तरक्षित के शिष्य कमलशील थे और आप धर्मपाल दर्बार के (770 ई० शिलालेख अनुसार) पण्डित थे। डॉ० ए. जि. कृष्ण वारियर (केरल विश्वविद्यालय) ने शांकर सूत्र भाष्य का मलयालम् भाषा में अनुवाद किया है। इस ग्रंथ की प्रस्तावना में कहा है कि आचार्य शंकर ने दिङ्नाग रचित 'आलम्बन परीक्षा' से उद्धरण किया है। इनकी राय में दिङ्नाग का समय 450 ई० का है। कांची कामकोटि मठ प्रचारकों का कहना है कि स्वयं कमलशील ने शंकराचार्य के सूत्र से उद्धरण किया है, न कि आचार्य शंकर ने। यह धारणा भ्रामक एवं गलत है। 'नाभाव उपलब्धे' सूत्र के भाष्य में आचार्य शंकर नें दिङ्नाग के 'आलम्बन परीक्षा' ग्रंथ से उद्धरण किया है 'व्याचक्षते, यदन्तर्ज्ञेयरूपं तद्बहिर्वदव भासते, इति'। आचार्य शंकर ने स्पष्ट कहा है 'व्याचक्षते और इति' और इन पदों से निस्सन्देह स्पष्ट होता है कि आचार्य शंकर ने ही उद्धरण किया है। आगे लिखते हैं कि 'बहिर्वद् इति वत्कारं कुर्वन्ति' और इससे स्पष्ट होता है कि आचार्य ने उद्धरण किया है।

11. उद्योतकर

(छठवीं शताब्दी ई० प्रारम्भ काल)

सूत्रमाष्य में (बि, इन्डिका सीरीज, पृष्ठ 57) उल्लेख है। उद्योतकर ने वसुबन्धु (जो 480 ई० में मर चुके थे) का खण्डन किया है। उद्योतकर ने 'न्याय वार्तिक' में दिङ्नाग का खण्डन किया है। धर्मकीर्ति ने उद्योतकर (न्याय भाष्य वार्तिक' रचयिता) का खण्डन किया है। अतः उद्योतकर का काल वसुबन्धु (480 ई०) एवं दिङ्नाग (पाँचवीं शताब्दी

उत्तरार्ध) के पश्चात् काल एवं धर्मकीर्ति (सातवीं शताब्दी मध्यकाल) के पूर्व का काल होना निश्चित होता है।

12. श्री गौडपाद

(छठवीं शताब्दी ई० मध्यकाल)

श्री बालकृष्णानन्द सरस्वती लिखते हैं—'गौडचरणाः कुरुक्षेत्रगत हीरावती नदी तीरभव गौडजातिश्रेष्ठाः देशविशेष भवजाति नाम्नैव प्रसिद्धाः।' आचार्य शंकर के परम गुरु ने माण्डूक्योपनिषद पर कारिका की रचना की है। आप ने कारिका (iv-99) में बुद्धदेव का नाम लिया है और बौद्ध मत का खण्डन (iv-83) किया है। माध्यमिक कारिका का रचयिता नागार्जुन है। श्री गौडपाद ने अपनी कारिका में नागार्जुन का नाम नहीं लिया है अथवा उनकी रचनाओं का उद्धरण भी नहीं किया है। तथापि निष्पक्षपात होकर इन दोनों की कारिकाओं का अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि श्री गौड़पाद की कारिका और नागार्जुन की कारिका में कई जगहों में समानता पायी जाती है तथा श्री नागार्जुन की कारिका से गौड़पाद पूर्णतया अवगत थे। इस विषय की पुष्टि एवं प्रमाण सविस्तार 'आगमशास्त्र गौडपाद' (रचयिता बिधुशेखर भट्टाचार्य) नामक पुस्तक में पाठक पायेंगे। गौडपाद ने बौद्ध मत का खण्डन किया है और यदि नागार्जुन गौड़पाद के पश्चात् काल के होते तो अवश्य गौडपाद के आक्षेपों का उत्तर देते। अतः श्री गौडपाद का समय श्री नागार्जुन काल के पश्चात् का ही है। नागार्जुन ने शतवाहन महाराजा गौतमीपुत्र सत्करणी (द्वितीय शताब्दी ई० पूर्वार्ध) को पत्र लिखा था जिसका अनुवाद तिब्बती भाषा में अब भी उपलब्ध है। ऐतिहासिकों ने उक्त महाराजा का काल द्वितीय शताब्दी ईसा पश्चात् काल का बतलाया है। अतः नागार्जुन का काल प्रथम या द्वितीय शताब्दी ईसा पश्चात् का ही है।

चीनी यात्री हुवन च्वांग कहते हैं कि नागार्जुन और महाराज कनिष्क समसामयिक थे। अकाट्य प्रमाणों से सिद्ध किया है कि कनिष्क का काल प्रथम शताब्दी ई० का है। कुछ विद्वानों ने इनका काल प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व का होना भी कहा है।

वसुबन्धु रचित 'अभिधम्म कोष' (पाँचवी शताब्दी ई०) पर टीका यशोमित्र ने लिखी है। भिक्खु परमार्थ जो चीन देश गये थे और उन्होंने अन्य अनेक ग्रंथों की रचना की थी, यशोमित्र के समकालीन थे। भिक्खु परमार्थ का देहान्त 569 ई० में हुआ था। अतः यशोमित्र का काल भी छठवीं शताब्दी का है। श्री गौडपाद को 'अभिधम्म कोष टीका' पुस्तक से परिचय था। कुछ विद्वान यशोमित्र एवं गौडपाद की विचारधारा और उनके द्वारा रचित ग्रंथ से ली गयी कुछ पंक्तियों की समानता से यह निष्कर्ष निकालते हैं कि श्री गौडपाद, यशोवर्मा की टीका से परिचित थे। अतः गौडपाद का काल छठवीं शताब्दी ई० पूर्व का हो नहीं सकता है।

बौद्धमत विद्वान असंग का काल तीसरी शताब्दी ई० का कहा जाता है। श्री गौडपाद ने कुछ श्लोकों को असंग रचित श्लोकों के समान ही लिखा है। विद्वानों का अभिप्राय है कि श्रीगौडपादका काल असंग काल के पश्चात् होना चाहिए। अतः श्री

गौडपाद का काल नागार्जुन, आर्यदेव, असंग एवं यशोमित्र के काल के बाद का ही है, अर्थात् छठवीं शताब्दी पूर्व का नहीं हो सकता है।

यह कहा जाता है कि ईश्वरकृष्ण रचित 'सांख्यकारिका' पर श्री गौडपाद ने टीका लिखी है और जिसका अनुवाद चीनी भाषा में छठवीं शताब्दी उत्तरार्ध में किया गया था। अतः गौडपाद का काल छठवीं शताब्दी प्रारम्भ या पूर्व का ही है। श्री बेलवाल्कर और कई अनुसन्धानकर्ता विद्वानों ने प्रमाणयुक्त यह सिद्ध किया है कि जो टीका चीनी भाषा में अनुवाद की गयी थी वह 'मथरावृत्ति' (Mathara Vritti) की थी। जो टीका गौडपाद के नाम से प्रचलित है उसमें एवं 'मथरावृत्ति' टीका में अनेक मतभेद भी देखे जाते हैं। अन्य टीकाएँ भी उपलब्ध हैं। चीनी भाषा अनुवाद पूर्णतया 'मथरावृत्ति' का ही था न कि अन्य प्रचलित टीकाओं का। यह सन्देह किया जाता है कि क्या श्रीगौडपाद ने सांख्य कारिका पर टीका की रचना की थी ? पाठकों से निवेदन है कि वे बेलवाल्कर के लेखों का अध्ययन करें।

शान्तरक्षित एवं कमलशील दोनों ने श्रीगौडपाद की रचना का उद्धरण किया है। यें दोनों विद्वान आठवीं शताब्दी के हैं। भावविवेक या भाव्य ने भी श्रीगौडपाद का उद्धरण किया है। कहा जाता है कि भावविवेक ने अपने रचित 'माध्यमिक हृदय कारिका' पर टीका 'तर्कज्वाला' में गौडपाद कारिका से चार श्लोक उद्धृत किये हैं, जिनमें एक श्लोक कारिका (III-5) का श्लोक है—'यथैकस्मिन्घटाकाशे रजोधूमादिभिर्युते। न सर्वे संप्रयुज्यन्ते तद्वत् जीवा सुखादिभिः।' धर्मपाल का समसामयिक काल भावविवेक का काल था। शीलभद्र के गुरु धर्मपाल थे। शीलभद्र ने चीनी यात्री विद्वान हुवान च्वांग को शिक्षा दी थी और हुवन च्वांग स्वयं इन विषयों को स्वीकार करते हैं। हुवन च्वांग ने भारत भ्रमण 629-654 ई० में किया था। अतः भावविवेक का काल छठवीं शताब्दी उत्तरार्ध होना सम्भव है। यदि भावविवेक ने श्रीगौडपाद का उद्धरण किया है तो आचार्य शंकर का समय सातवीं शताब्दी उत्तरार्ध या आठवीं शताब्दी प्रारम्भ का होना सम्भव है। श्रीगौडपाद कारिका पर टीका आचार्य शंकर ने लिखी है, जहाँ वे अपने परम गुरु श्रीगौडपाद एवं अपने गुरु गोविन्द भगवत्पाद की स्तुति वन्दना करते हैं। सूत्रभाष्य में भी अपने परमगुरू श्री गौडपाद को आदर भक्ति से कहा है, तत्पश्चात् उनकी कारिका का उद्धरण भी किया है। वे कहते हैं 'अत्रोक्तं वेदान्तार्थसंप्रदायविद्भिराचार्यैः' (सू. भा. 2-1-9) एवं 'मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः'। सुरेश्वराचार्य ने नैष्कर्म्यसिद्धि में कहा है 'एवं गौडैर्द्राविडैर्नः पूज्यैरर्थः प्रभाषितः।' यहाँ गौडदेशीय आचार्य श्री गौडपाद एवं द्रविडदेशीय श्री शंकरचार्य का निर्देश किया है।

वालेसर कहते हैं कि भावविवेक द्वारा रचित 'माध्यमिक हृदयकारिका' पर टीका 'तर्कज्वाला' भी आप ने लिखी है जो तिब्बतीय भाषा में अनुवादित है जिसमें श्री गौडपादकारिका से कुछ श्लोक उद्धृत हैं एवं कुछ श्लोक समान पाये जाते हैं। यदि इस विषय को स्वीकार किया जाय तो श्रीगौडपाद का काल लगभग 550 ई० का होना निश्चित होता है। भावविवेक का समय चीनी यात्री हुवन च्वांग के भारत भ्रमण काल के पूर्व का है। परन्तु जकोबि एवं अन्य विद्वानों का अभिप्राय भिन्न है। श्री डी. आर, कर्माकर ने 500 ई० कहा है। अय्यास्वामी शास्त्री ने 725 ई० का बतलाया है। कुछ प्रसिद्ध

विद्वानों के मत मे श्री गौडपाद का काल 557 से 583 ई० का है। श्री विधुशेखर भट्टाचार्य ने स्वीकार किया है कि भावविवेक ने गौडपाद कारिका के श्लोक के समान अपनी रचना में भी प्रयोग किया है। अतः भावविवेक को गौडपाद कारिका की पूर्ण जानकारी थी। अन्य कुछ विद्वानों का मानना है कि भावविवेक के श्लोक गौडपाद कारिका से नहीं लिये गये हैं और सम्भव है कि ये श्लोक अमृतबिन्दु उपनिषद एवं अन्य वैदिक ग्रंथों से लिये गये हों। अन्य श्लोकों के जो समान्तर दीखते हैं, उनमें शब्द और अर्थ भिन्न-भिन्न हैं। अन्य विद्वानों ने इस मत का प्रमाणयुक्त खण्डन किया है।

13. प्रभाकर
(कुमारिल भट्ट के समसामयिक–कुछ विद्वानों का अभिप्राय 650-720 ई० का भी है)

सूत्रभाष्य में (बी. इन्डिका सीरिज, पृष्ठ 57) उल्लेख है। विद्वानों की मान्यता है कि श्री प्रभाकर का शिष्य शालिकनाथ है। कुमारिल भट्ट एवं प्रभाकर दोनों व्यक्ति समसामयिक थे।

14. पूर्णवर्मा
(590 ई० या 630 ई०)

देखिये सूत्रभाष्य 2-1-18. चीनी यात्री हुवन च्वांग ने पूर्णवर्मा जो बोद्ध मतानुयायी थे, उनको पश्चिम मगध का राजा बतलाया है और उनका काल 590 ई० का बतलाया। 'यथा पूर्णवर्मणः सेवाभक्त परिधान मात्रफला, राजवर्मणस्तु राजतुल्यफला इति, तद्वत्।' 'यथा असदेवेदं राज्ञः कुलं सर्वगुणसम्पन्ने पूर्णवर्मणि राजन्ये सताति, तद्वत्।' (छा० 3-19-1)। आधुनिक अनुसन्धानविद्वानों का अभिप्राय है कि पूर्णवर्मा का नाम जो आचार्य शंकर ने लिया है वह किसी साधारण व्यक्ति का नाम भी हो सकता है। ऐसे अनेक नाम आचार्य ने लिखे हैं, यथा, बलवर्मा , जयसिंह, कृष्णगुप्त, यज्ञदत्त, विष्णुमित्र, देवदत्त आदि । देखिये डी. आर. भण्डारकर का लेख (इन्डियन अन्टिक्वरी–पुस्तक XLI), के. टी. तेलंग का लेख (इन्डियन अन्टिक्वरी, पुस्तक XIII), कनिंघाम का लेख (पुरातत्वविभाग की रिपोर्ट 1879-1880 ई०) एवं एस. श्रीकण्ठशास्त्री का लेख (QJMS, पुस्तक XX)। राष्ट्रकूट राजा गोविन्द III (767-785 ई०) का कडम्बा शासन में 'बलवर्म' का नाम पाया जाता है। हर्षवर्धन (सातवीं शताब्दी ई०) के समय में एक मंत्री पूर्णवर्मा के नाम से प्रसिद्ध थे।

15. राजवर्मा
(पूर्णवर्मा का काल)

देखिये सूत्रभाष्य 2-1-17। कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि कन्नौज के राजा शशांक का दूसरा नाम राजवर्मा था और आप पूर्णवर्मा के समसामयिक थे। आधुनिक विद्वानों ने इनको एक साधारण व्यक्ति होने का विषय स्वीकार किया है।

16. सुन्दरपाण्ड्य
(सातवीं शताब्दी पूर्वार्ध)

सूत्रभाष्य 1-1-4 के अन्त में 'अपि चाहु' कहकर तीन श्लोकों को उद्धृत किया है, यथा–'गौणमिथ्यात्मनोऽसत्त्वे पुत्रदेहादि बाधनात्। सद्ब्रह्मात्माहमित्येवं बोधे कार्यं कथं भवेत् ॥ अन्वेष्टव्यात्म विज्ञानात्प्राक्प्रमातृत्वमात्मनः । अन्विष्टः

स्यात्प्रमातैवपाप्मदोषादिवर्जितः ॥ देहात्म प्रत्ययोयद्वत् प्रमाणत्वेन कल्पितः। लौकिकं तद्वदेवेदं प्रमाणं त्वाऽऽत्मनिश्चयात् ॥ इति।' वाचस्पति मिश्र (841 ई०) इन श्लोकों को 'ब्रह्मविदां गाथा' कहकर उल्लेख किया है। 'पंचपादिका' के ऊपर आत्मस्वरूप कृत 'प्रबोधपरिशोधिनी' टीका में उन श्लोकों को सुन्दरपाण्ड्य की रचना कहा है। माधवमंत्री (चौदहवीं शताब्दी) कृत सूतसंहिता की टीका में और तंत्रवार्तिक में इनके कतिपय श्लोक उद्धृत किये गये हैं। कहा जाता है कि सुन्दरपाण्ड्य ने उत्तरमीमांसा पर वार्तिक लिखा था और 'अध्यारोपापवाद' की पुष्टि की है। सुन्दरपाण्ड्य आचार्य शंकर और कुमारिल भट्ट से भी पूर्ववर्ती थे। आचार्य शंकर ने सुन्दरपाण्ड्य को 'सम्प्रदायवित्' कहा है—"तथा हि संप्रदायविदां वचनम् अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपंचं प्रपंचये' इति।" गीताभाष्य 13/13।

17. द्रविडशिशु
(ज्ञानसंम्बन्दर का काल सातवीं शताब्दी पूर्वार्ध या प्रारम्भकाल)

सौन्दर्यलहरी, 75 वें श्लोक में उल्लेख है, यथा, 'दयावत्या दत्तं द्रविडशिशुरास्वाद्य तव यत्, कवीनां प्रौढ़ानां जननि कमनीयः कवयिता ॥' कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि यह द्रविडशिशु ज्ञानसंम्बन्दर को निर्देश करता है। परन्तु टीकाकार लक्ष्मीघर (तेरहवीं शताब्दी) का कहना है कि यह स्तोत्रकर्ता आचार्य शंकर को ही निर्देश करता है। सौभाग्यवर्धनि व्याख्या में कर्ता कैवल्याश्रम ने एक कथा भी इस प्रसङ्ग में लिखी है। आपका भी मत है कि यह द्रविडशिशु आचार्य शंकर को ही निर्देश करता है। कामेश्वरसूरी ने अपने द्वारा रचित व्याख्या में एक अन्य कथा कही है और आपका भी मत है कि यह द्रविडशिशु आचार्य शंकर को ही निर्देश करता है। कृपया देखिये—लक्ष्मीघर, सौभाग्यवर्धनी, अरुणामोदिनि, आनन्दगिरीय, पदार्थचन्द्रिका, आदि टिकाएँ। अन्य एक विद्वान का अभिप्राय है कि यह व्यक्ति प्रवरसेन (द्रामिडा का पुत्र) को निर्देश करता है। रामकवि 'डिण्डिम' व्याख्या में कहते हैं 'स्तोत्र मेतद्वदन्त्येके शिवेन परिभाषितम्। तस्यैवांशावतारेण शंकरेणेति केचन। केचिद्वदन्त्यादि शक्तेर्ललिताया महौजसः। दशनेभ्यः समुद्भूतमिति नानाविधा श्रुतिः ॥' अर्थात परमशिव से रचित है या परमशिव के अवतार श्रीशंकर से रचित है या शक्ति ललिता से रचित है, ऐसे नाना विधि सुना जाता है। सौन्दर्यलहरी के रचयिता का नाम भी सन्देहास्पद कर दिया गया है। इसी रचयिता के विषय में देखिये नारमन ब्रौन की पुस्तक 'Introduction to Soundarya Lahari' (Harvard Oriental Series-43)। अनेक स्तोत्र आचार्य शंकर के नाम से प्रकाशित हुए हैं। इनमें अधिकांश आचार्य शंकर कृत नहीं हैं। इसी प्रकार प्रमाण देते हुए कुछ अनुसन्धान विद्वानों की राय है कि 'सौन्दर्यलहरी' किसी एक अन्य व्यक्ति (उन्हीं के पीढ़ी में आगे) शंकराचार्य की कृति है। आचार्य शंकर की रचना है या नहीं, यही धारणा अत्यन्त संदिंग्ध है।

18. गुणमति
(630-640 ई० काल)

सूत्रभाष्य 2-2-22/24 में वैनाशिक परिकल्पित निरोध, प्रतिसंख्या निरोध, अप्रतिसंख्या निरोध एवं आवरण का अभाव आकाश, सब गुणमति द्वारा रचित 'अभिधर्मकोष व्याख्या' (बौद्ध ग्रंथ) से उद्धृत है। 'अभिधर्म कोष' ग्रंथ के रचयिता वसुबन्धु का मरण लगभग 480 ई० का था। अतः गुणमति का काल इसके पश्चात् का ही है। स्थिरमति का समय गुणमति का है। गुणमति का शिष्य स्थिरमति वल्लभी राजा गुहसेन

के समकालीन थे। गुहसेना ने छठवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राज्य किया था। स्थिरमति का समय छठवीं शताब्दी के पूर्व का नहीं है। चीनी यात्री हुवनच्वाङ्ग ने स्थिरमति एवं गुणमति का नाम निर्देश किया है।

19.धर्मकीर्ति

(ऐतिहासिकों की मान्यता 635-650 ई० । तारानाथ ने 700/750 ई० कहा है, अनुसन्धान विद्वानों ने सातवीं शताब्दी ई० उत्तरार्ध निश्चित किया है।)

आचार्य शंकर द्वारा रचित 'उपदेश साहस्री' के 18वें प्रकरण के 142वें श्लोक में पद्य उद्धृत है, यथा, 'अभिन्नोऽपि हि बुद्ध्यात्मा विपर्यासित दर्शनैः । ग्राह्य ग्राहक संवित्तिः भेदवानिव लक्ष्यते।' यह श्लोक धर्मकिर्ति के 'प्रमाण विनिश्चय' से लिया गया है। सूत्र भाष्य 2-2-28 में विज्ञानवाद (योगाचार) के खण्डन में धर्मकीर्ति के प्रसिद्ध श्लोक की सूचना है। 'अतएव सहोपलम्भ नियमोऽपि प्रत्ययविषययोरुपायोपेयभावहेतुकः नाभेदहेतुकः इत्यभ्युपगन्तव्यम्'। इस कारिका का पूर्वार्ध धर्मकीर्ति के 'प्रमाणविनिश्चय' तथा उत्तरार्ध 'प्रमाण वार्तिक' में है। सूत्रभाष्य 2-2-18 में आचार्य शंकर ने 'विनेयभेद' का निर्देश किया है—'स च बहुप्रकारः प्रतिपत्तिभेदाद्विनेयभेदाद्वा' (प्रतिपत्ति के भेदों अथवा शिष्यों के भेद से, वह बहुत प्रकार का है) जो धर्मकीर्ति के मत का निर्देश करता है, यथा, 'देशना लोकनाथानां सत्त्वांशयवशानुगाः ।। भिद्यन्ते बहुधा लोक उपायैर्बहुभिः पुनः गम्भीरोत्तानभेदेन क्वचिच्चोभयलक्षणा । भिन्नापि देशानाऽभिन्ना शून्यताऽद्वय लक्षणा।' 'सर्वास्तित्ववादिनः केचिद्विज्ञानास्तित्वमात्रवादिनः, अन्ये पुनः सर्वशून्यत्ववादिन इति।' (देखिये बोधिचित्तविवरण, भ़ामती एवं रत्नप्रभा ग्रंथ)। सुरेश्वराचार्य ने बृ०उप० भाष्य वार्तिक में कहा है—'त्रिष्वेवत्वविनाभावादिति यद् धर्मकीर्तिना। प्रत्यज्ञापि प्रतिज्ञेयं हीयतासौ न संशयः।' टीकाकार आनन्दगिरि (सुरेश्वराचार्य रचित वार्तिक पर टीका) लिखते हैं— 'कीर्तिवाक्यमुदाहरति' । धर्मकीर्ति नालन्दा विहार के अध्यक्ष आचार्य धर्मपाल के शिष्य थे और शीलभद्र के सहाध्यायी थे। सुरेश्वराचार्य ने अपने ग्रंथ में 'नैष्कर्म्य सिद्धि' में 'उपदेश साहस्री' से उद्धरण किया है। अतएव 'उपदेश साहस्री' आचार्य शंकर द्वारा रचित ग्रंथ है।

तिब्बत महाराजा स्त्राङ्—तान्—गम्पो, जो सातवीं शताब्दी में राज्य करते थे उनके समसामयिक व्यक्ति धर्मकीर्ति थे। तिब्बतीय ग्रंथों एवं अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों से यह विषय सिद्ध होता है। लामा तारानाथ की रचनाओं से ज्ञात होता है कि धर्मकीर्ति नालन्दा विहार के अध्यक्ष आचार्य धर्मपाल के शिष्य थे और शीलभद्र के सहाध्यायी थे। हुवनच्वाङ्ग लिखते हैं (629- 645 ई०) कि आपने शीलभद्र से शिक्षा प्राप्त की थी। शीलभद्र धर्मपाल के शिष्य थे। चीनी यात्री ईत्सिङ्ग लिखते हैं (671-695 ई०) कि बौद्ध मत के प्रकाण्ड पण्डित सूर्य-चन्द्र के समान ज्योतिर्मय थे और इस सूची में नागार्जुन, देव, अश्वघोष, वसुबन्धु, असङ्ग, संघभद्र, भावविवेक, गीन, सिंहकन्द, स्थिरमति, प्रज्ञागुप्त, गुणप्रभा, धर्मपाल, धर्मकीर्ति, शीलभद्र, गुणमति, आदि का नाम दिया है। अतः सातवीं शताब्दी उत्तरार्ध के पूर्व ही ये सब प्रकाण्ड विद्वान जीवित थे। दिङ्नाग के 'प्रमाणसमुच्चय' का विस्तार ही धर्मकीर्ति का 'प्रमाणवार्तिक' है। दिङ्नाग का देहान्त लगभग 540 ई० में हुआ था। लामा तारानाथ लिखते हैं कि धर्मकीर्ति ने ईश्वरसेना जो दिङ्नाग के अनुयायी थे उनसे बौद्ध धर्म पढ़ा था। भर्तृहरि के 'वाक्यपदीय' का निर्देश

धर्मकीर्ति ने किया है। उद्योतकर ने वसुबन्धु (जो लगभग 480ई० में मर चुके थे) का खण्डन किया है। धर्मकीर्ति ने उद्योत्कर (न्यायभाष्य वार्तिक रचयिता) का खण्डन किया है। अतः धर्मकीर्ति का समय सातवीं शताब्दी पूर्वार्ध का होना सम्भव है। उद्योत्कर ने 'न्यायवार्तिक' में दिङ्नाग का खण्डन किया है। दिङ्नाग का समय लगभग 540 ई० का था। धर्मकीर्ति का समय सातवीं शताब्दी का होना निश्चित होता है।

20. कुमारिल भट्ट

(सातवीं शताब्दी का अन्त एवं आठवीं शताब्दी का पूर्वार्ध काल)

उपदेश साहस्री (18 वाँ प्रकरण 139-141 श्लोक) एवं तैत्तिरीय भाष्य के उपोद्घात में कर्मविषयक मत का उल्लेख है। यहाँ उनका नाम उल्लेख नहीं है। परन्तु आप के मत के समान कर्मविषयक मत का उल्लेख है। श्रीरामतीर्थ द्वारा रचित टीका में कहा है, यथा–'अतो नाप्रसिद्धं पक्षान्तरमिति भट्टमतमाशङ्क्य परिहरति–स्पष्टत्वमिति' । 'स नैव ज्ञानविषयतातिरिक्तो भट्टमते संभवतीत्यर्थः ।' आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्र भाष्य (1-1-3/4) में जो टिप्पणी की है वह कुमारिल भट्ट को ही निर्देश किया है। आचार्य शंकर ने अपने तैत्तिरीय भाष्य में कहा है, यथा–'काम्यप्रतिषिद्धयोरनारम्भात् आरब्धस्य चोपभोगेन क्षयात् नित्यानुष्ठानेन च प्रत्यवायाभावात् अयत्नत एव स्वात्मन्यवस्थानं मोक्षः । अथवा निरतिशयायाः प्रीतेः स्वर्गशब्दवाच्यायाः कर्महेतुत्वात् कर्मम्य एव मोक्ष इति चेत्, न।' (काम्य और निषिद्ध कर्मों का आरम्भ न करने से, प्रारब्ध कर्मों का भोग द्वारा क्षय हो जाने से तथा नित्य कर्मों के अनुष्ठान से प्रत्यवायों का अभाव हो जाने से अनायास ही अपने आत्मा में स्थित होनारूप मोक्ष प्राप्त हो जायेगा, अथवा स्वर्गशब्दवाच्य आत्यन्तिक प्रीति कर्मजनित होने के कारण कर्म से ही मोक्ष हो सकता है, यदि ऐसा माना जाय, तो?) सुरेश्वराचार्य ने इसी पर टीका करते हुए स्व–रचित तैत्तिरीय भाष्यवार्तिक में जो 'मीमांसकम्मन्य' बतलाया है (इति मीमांसकम्मन्यैः कर्मोक्तं मोक्षसाधनम् प्रत्याख्यायात्म विज्ञानं तत्र न्यायेन निर्णयः) सो कुमारिल भट्ट को ही निर्देश किया है।आपने श्लोकवार्तिक से उद्धरण किया है– 'मोक्षार्थी न प्रवर्तेत तत्र काम्यनिषिद्धयोः । नित्यनैमित्तिके कुर्यात्प्रत्यवाय जिहासया' । कुमारिल भट्ट धर्मकीर्ति के किंचित परवर्ती हैं। सुरेश्वराचार्य ने बृ० उप० भाष्यवार्तिक में कुमारिल भट्ट के श्लोकवार्तिक से दो श्लोकों का निर्देशन किया है–'यज्जातीयैः प्रमाणैस्तु... कालान्तरेप्यभूत ॥ यत्राप्यतिशयोदृष्टः.. श्रोत्रवृत्तिता ॥' मण्डनमिश्र रचित 'ब्रह्मसिद्धि' का खण्डन सुरेश्वराचार्य ने 'नैषकर्म्य सिद्धि' में किया है। अतः कुमारिल भट्ट का काल सुरेश्वराचार्य के पूर्व का है। कीथ द्वारा रचित 'कर्ममीमांसा ग्रंथ' है और आप का अभिप्राय है कि कुमारिल भट्ट का काल 700 ई० पूर्व का नहीं है।

श्री कुमारिल भट्ट ने 'श्लोकवार्तिक'(2) में कहा है "विशेषदृष्टमेतच्च लिखितं विन्ध्यवासिना" अर्थात भट्टपाद विन्ध्यवासिन के पूर्वकाल के हो नहीं सकते। इसी प्रकार विन्ध्यवासिन का नाम अन्यत्र भी प्राप्त होता है, यथा– तत्वसंग्रह, युक्तिदीपिका, स्यादवादमंजरी, आदि । परमार्थ लिखते हैं कि विन्ध्यवासिन ने बुद्धमित्र (वसुबन्धु का गुरु) को विवाद में पराजित किया था। वसुबन्धु अपने गुरु के पराजित होने के विषय पर उनसे बदला लेना चाहते थे। परमार्थ के अनुसार विन्ध्यवासिन का काल पाँचवीं

शताब्दी प्रारम्भ का है। अतः कुमारिल भट्ट का समय पाँचवीं शताब्दी (पूर्वभाग)पश्चात् काल का ही हो सकता है।

कुमारिल भट्ट ने जैन विद्वान समन्तभद्र की रचनाओं पर (सर्वज्ञत्व विषय पर) तीव्र प्रहार अपने लेखों में किया है। समन्तभद्र ने 'तत्वार्थाधिगम सूत्र' (उमास्वाती या वाक्काचार्ययाउमास्वामिन)) पर भाष्य 'गन्धहस्ति' नाम का लिखा था। इस भाष्य का एक भाग 'आप्तमीमांसा' नाम से प्रख्यात हुआ। विद्यानन्द ने अपनी 'अष्टसाहस्री' टीका (समन्तभद्र के 'आप्तमीमांसा' पर टीका) में कहा है कि कुमारिल भट्ट ने समन्तभद्र पर लेखनी से प्रहार किया है। समन्तभद्र का समय ईसा पश्चात् काल का है। जैनमत पट्टवली के अनुसार 44 ई० में आप गद्दी में बैठे। समन्तभद्र दिगम्बर थे और श्वेताम्बर-दिगम्बर का भेद प्रथम शताब्दी से ईसा पश्चात काल में ही हुआ। अतः समन्तभद्र का काल ईसा पश्चात् का ही है। कुमारिल का समय समन्तभद्र के पश्चात् का ही है।

विद्यानन्द ने अष्टसाहस्री टीका में सुरेश्वराचार्य के बृ० उप० भाष्य वार्तिक से उद्धरण किया है। यथा–'आत्मापि सदिदं ब्रह्म मोहात् पारोक्ष्यदूषितम्। ब्रह्मापि स तथैवात्मा सद् वितीयतये शते'। आप ने भर्तृहरि, धर्मकीर्ति, कुमारिल भट्ट, प्रभाकर आदि महान व्यक्तियों का नाम भी लिया है। जिनसेन द्वारा रचित 'आदिपुराण' में विद्यानन्द का निर्देश है। 'हरिवंश काव्य' में 783 ई० (705 शक) का काल जिनसेन का बतलाया है परन्तु अनेक अनुसन्धानकर्ताओं का अभिप्राय है कि 'आदिपुराण' के रचयिता जिनसेन दूसरे ही व्यक्ति हैंऔर यह व्यक्ति हरिवंशकाव्य-रचयिता जिनसेन से भिन्न है (देखिये के. बी. पाठक का लेख JBBRAS, Vol. XVIII, टी. आर. चिन्तामणी का लेख, JOR, Vol. III; एस. सि. विद्याभूषण रचित पुस्तक 'History of Indian Logic)। विद्यानन्द का काल निश्चित न होने से, इनका निर्देश निस्सन्देह प्रमाण में लिया नहीं जा सकता है।

मुनि जिनविजय ने प्रमाणों सहित यह सिद्ध किया है कि जैनमत ग्रंथकर्ता हरिभद्रसूरि का काल 700-770 ई० का है। चूँकि कुवलयमाला के रचयिता ने उद्योतना जो ग्रंथ मार्च माह 779 ई० में रचा गया था, उसमें कहा कि हरिभद्र उनके विद्यागुरु थे। हरिभद्र ने दिङ्नाग, भर्तृहरि, धर्मकीर्ति, आदि के ग्रंथों से उद्धरण किया है परन्तु आचार्य शंकर का न निर्देश है न उनके ग्रंथों से उद्धरण किया है। इस आधार पर स्पष्ट कहा जा सकता है कि आचार्य का 788-820 ई० जो काल तिथि आधुनिक अनुसन्धान विद्वानों ने स्वीकार किया है सो गलत नहीं है। (देखिये– 'Introduction to Dhurtakhyana' (धूर्ताख्यान) by Dr. A. N. Upadhye)

कुमारिल भट्ट ने दिङ्नाग का खण्डन किया है। कुमारिल के टीकाकार उम्बेक ने टीका में स्पष्ट कहा है कि 'दिङ्नागेनोक्तं'। अन्यत्र लिखते है 'दूषितं दिङ्नागेनेत्याह'। अतः कुमारिल ने दिङ्नाग का खण्डन किया है। दिङ्नाग के 'प्रमाण समुच्चय' पर टीका जितेन्द्रबुद्धि ने लिखा है और आप कहते हैं– 'आचार्य दिङ्नागपादैरुक्तं तत्र कुमारिलेनोक्तंन' । वाचस्पति मिश्र ने 'न्यायवार्तिक' टीका में कहा है 'दिङनागप्रभृतिभिरर्वाचीनैः' और दिङ्नाग को अर्वाचीन कहा है। अर्थात् अपने समय (वाचस्पति मिश्र का समय नवम् शताब्दी ई० मध्यकाल है) से बहुदूर कई शताब्दी पूर्व

का होना नहीं स्वीकार करते। दिङ्नाग ने वात्स्यायन के 'न्यायभाष्य' पर प्रहार किया। अत: दिङ्नाग का समय वात्स्यायन के पश्चात् ही हो सकता है। वात्स्यायन ने अपने न्यायभाष्य (1-1-39) में नागार्जुन के वादों का खण्डन किया है। नागार्जुन का समय ईसा पश्चात् काल का है। अतः दिङ्नाग का समय भी ईसा पश्चात् काल है। 'अभिधर्मकोष' के रचयिता वसुबन्धु के शिष्य दिङ्नाग थे। कुछ विद्वानों का मत है कि दिङ्नाग जब युवक थे तब वसुबन्धु वृद्ध थे। दिङ्नाग ने वसुबन्धु के लेखों का उद्धरण एवं टिप्पणी भी की है। अतः वसुबन्धु का काल दिङ्नाग के पूर्व का है। चीनी यात्री हुवनच्वाङ्ग कहते हैं कि वसुबन्धु पाँचवीं शताब्दी ई० में प्रसिद्ध थे। हुई–काय (परमार्थ का शिष्य) एवं ताव–ची जिन्होंने कई ग्रन्थों की चीनी भाषा में अनुवाद किया था, ये दोनों लिखते हैं कि वसुबन्धु पाँचवीं शताब्दी ई० में प्रख्यात थे। अन्य एक वसुबन्धु तीसरी शताब्दी ई० में थे और इनके साथ पाँचवीं शताब्दी ई० वसुबन्धु का नाता जोड़ना ठीक नहीं है। पाँचवीं शताब्दी वसुबन्धु 'अभिधर्मकोष' के रचयिता थे। अनुसंधान विद्वानों का मत है कि वसुबन्धु का समय 400-480 ई० का था। दिङ्नाग ने माधव पर कड़ी आलोचना की है। गुणमति ने माधव को विवाद में पराजित किया था। गुणमति का शिष्य स्थिरमति वल्लभीराज गुह–सेना के समकालीन के थे। गुहसेना ने छठवीं शताब्दी उत्तरार्ध में राज्य किया था। अतः दिङ्नाग का समय भी पाँचवीं शताब्दी उत्तरार्ध से छठवीं शताब्दी पूर्वार्ध का ही है। अतः कुमारिल का समय भी छठवीं शताब्दी के पूर्वकाल का हो नहीं सकता।

कुमारिल ने तंत्रवार्तिक में भर्तृहरि द्वारा रचित 'वाक्यपदीयकारिका' से (दूसरा खण्ड–121श्लोक) उद्धृत किया है। पुण्यराज एवं जैनविद्वान सिंहसूरी का अभिप्राय है कि भर्तृहरि के गुरु वसुरात थे (देखिये वाक्यपदीय II- 486 पर टीका)। पुण्यराज कहते हैं– 'न तेनास्मद्गुरोस्तत्रभवतो वसुरातादन्यः' एवं 'चन्द्राचार्य वसुरातगुरु प्रभृतीनां'। सिंहसूरि कहते हैं–'वसुरातस्य भर्तृहर्युपाध्यायस्यमतं' एवं 'वसुरातः भर्तृहरेरुपाध्यायः।' परमार्थ कहते हैं कि वसुरात और वसुबन्धु के बीच में वाद–विवाद हुआ था। गुप्तवंश महाराजा बालादित्य का कुटुम्ब रिश्तेदार वसुरात थे। अतः वसुरात का समय पांचवीं शताब्दी ई० का है। भर्तृहरि का समय इसके पूर्वकाल का होना असम्भव है। हरिस्वामिन द्वारा रचित 'शतपथ ब्राह्मण व्याख्या' ग्रन्थ 638 ई० में संपन्न हुआ और इस विषय को स्वयं लिखते हैं। यहाँ वाक्यपदीय का मंगलश्लोक का निर्देश करते हैं। अतः भर्तृहरि 638 ई० पूर्वकाल के हैं, न कि पश्चात्काल के।

आचार्य शंकर ने स्फोटवाद का खण्डन किया है, अतः आप भर्तृहरि के पश्चात्काल के हैं। चीनी यात्री इत्सिङ्ग 690 ई० में भारत भ्रमण किया था और आप लिखते हैं कि बौद्धमत वैयाकरणी भर्तृहरि जिन्होंने टीका 'चूर्णी' (वाक्य एवं प्रकीर्ण) पर लिखा था, वह व्यक्ति 40 वर्ष पूर्व मर चुका। यह कहा जा सकता है कि भर्तृहरि की मृत्यु 650 ई० में हुई थी। परन्तु कुछ विद्वानों का अभिप्राय है (रङ्गस्वामी अय्यङ्गार, डा० कुञ्जनराजा, प्रो० नकमुरा, आदि) कि भर्तृहरि का काल पाँचवीं शताब्दी ई० का है। कर्णकगोमिन कहते हैं कि कुमारिल भट्ट के समसामयिक में धर्मकीर्ति थे। 'प्रमाणवार्तिक' का श्लोक 'अपौरुषेयतापीष्टा कतृणामस्मृतेः किल। सन्त्यस्याप्यनुवक्तार इति धिक् व्यापकं तमः।' के टीका में कहते हैं 'अपरेऽपीदानीं तन्मतानुसारिणः कुमारल प्रभृतयः परीक्षकमन्याः एवमेतदनुवदन्तीति'। कुमारिल ने भर्तृहरि के स्फोटवाद का खण्डन किया

है और 'वाक्यपदीय' से अनेक श्लोक उद्धृत किया है। अतः भर्तृहरि के पश्चात् काल के कुमारिल भट्ट हैं। (देखिये Bombay Branch of Royal Asiatic Society Journal Vol , XVIII, Article by K. B. Pathak on 'Bhartruhari and Kumarila.)

दिङ्नाग ने 'प्रमाणसमुच्चय' में वाक्यपदीय से कारिका का उद्धरण किया है, यथा–'संख्याप्रमाण संस्थान निरपेक्षः प्रवर्तते। बिन्दौ च समुदाये च वाचक : सलिलादिषु'। टीकाकार जिनेन्द्रबुद्धि ने कहा है 'भर्तृहरिणा उक्तं सलिलादिष्विति।' अतः दिङ्नाग भर्तृहरि से परिचित थे और वाक्यपदीय ग्रंथ छठवीं शताब्दी प्रारम्भ में लिखा होगा न कि इसके पश्चात् काल में। अतः भर्तृहरि का समय पाँचवीं ई० उत्तरार्ध का होना ही ठीक है। चीनी यात्री ईत्सिङ्ग का कथन कि भर्तृहरि 50 वर्ष पूर्व के थे। लगभग 650 ई० में भर्तृहरि का देहान्त हुआ होगा। कुछ विद्वान इन विषयों को स्वीकार नहीं करते और उनका अभिप्राय पाँचवीं शताब्दी उत्तरार्ध का है।

तिब्बतीय ग्रंथों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि कुमारिल भट्ट और धर्मकीर्ति दोनों समसामयिक थे। और ये दोनों व्यक्ति एक दूसरे से परिचित थे। देखिये एस. सि. विद्याभूषण रचित पुस्तक 'History of Indian Logic' और जे. ए. एस. बर्जस का लेख 'The Indian Antiquary, Vol IV, (1875)। बर्जस लिखते है 'As Dharmakirti is supposed to have been the contemporary of Tibetan King Srang -Tzan-Gampo, we may infer from this that all we have been relating passed in the seventh century'. Seers and Thinkers', डॉ० वि. राघवन द्वारा संपादित एवं भारत सरकार द्वारा प्रकाशित पुस्तक में, दलसुख मलवानिया का धर्मकीर्ति पर एक लेख प्रकाशित है और लेखक कहते हैं कि धर्मकीर्ति का समय छठवीं या सातवीं ई० का है और धर्मकीर्ति एवं कुमारिल भट्ट दोनों समसामयिक हैं। कुमारिल ने धर्मकीर्ति का खण्डन किया है, यथा धर्मकीर्ति ने लिखा है–(प्रमाण विनिश्चय) 'अविभागोऽपि (अभिन्नोऽपि) बुद्ध्यात्मा विपर्यासित दर्शनैः। ग्राह्य ग्राहक संवित्ति भेदवानिव लक्ष्यते' इसका खण्डन कुमारिल ने किया है– ग्राह्यग्राहकयोरैक्यं सर्वथा प्रतिपद्यते। बाह्याभ्यन्तररूपश्च परिकल्पो मृषेष्यते—।' धर्मकीर्ति ने कहा है–'यदाभासं प्रमेयं तत्प्रमाणं फलते पुनः। ग्राहकाकार संवित्योस्त्रयं नातः पृथक कृतम् ।' कुमारिल ने इसका खण्डन किया है–'स्वाकारश्च स्वसंवित्तिं मुक्त्वा नान्यः प्रतीयते। प्रामाण्यं यस्य कल्प्येतस्वसंवित्तिं फलं प्रति।' धर्मकीर्ति ने कहा है– 'धर्मिणोऽनेकरूपस्य इन्द्रियाद्वोधो न संभवेत्। स्व संवेद्यमनिर्देश्य रूपमिन्द्रियगोचरः। कल्पनापि स्व संवित्तिरिष्टा नार्थेऽत्र कल्पनात्'। कुमारिल ने इसका खण्डन किया है 'कल्पनायाः स्वसंवित्ताविन्द्रियाधीनता कथम्। मनस्तत्रेन्द्रियं चेत् स्याद गोत्वादावपि तत्समम्। स्वसंवित्तौ तदिष्टं चेल्लोको नह्येवमिच्छति। तस्माद् रूढ़ित्वमेष्टव्यं पारिभाषिकतापि वा'। कुमारिल भट्ट ने धर्मकीर्ति पर प्रहार किया है, अतः कुमारिल भट्ट का समय धर्मकीर्ति से पूर्व का होना असम्भव है। धर्मकीर्ति ने भी कुमारिल भट्ट के वेदविषयक लेखनी का खण्डन किया है। धर्मकीर्ति के प्रमाणवार्तिक के 'स्वार्थानुमान परिच्छेद' में कुमारिल भट्ट पर प्रहार है। अतः कुमारिल भट्ट का समय धर्मकीर्ति के पश्चात् काल का नहीं है एवं ये दोनों व्यक्ति समसामयिक हैं।

शान्तरक्षित ने 'तत्वसंग्रह' में कुमारिल भट्ट के श्लोकवार्तिक (चोदना सूत्र) पर प्रहार और खण्डन किया है। शान्तरक्षित ने कुमारिल भट्ट का भी नाम लिया है–'यदाह कुमारिलः' (न्यायमत खण्डन भाग)। शान्तरक्षित ने तिब्बत की यात्रा भी आठवीं शताब्दी

के मध्य भाग में की है। चूँकि शान्तरक्षित ने भट्ट जी के लेख पर प्रहार किया है और कुमारिल का समय सातवीं शताब्दी का है, अतः शान्तरक्षित एवं इनके शिष्य कमलशील आठवीं शताब्दी उत्तरार्ध में तिब्बत गये हुए थे। अतः कुमारिल भट्ट का काल सातवीं शताब्दी उत्तरार्ध का होना निश्चित होता है। 'तत्वसंग्रह' के रचयिता शान्तरक्षित एवं इनके शिष्य 'पञ्जिका' के रचयिता कमलशील ने तिब्बत मे बौद्धमत का प्रचार खूब किया । चीनी इतिहास द्वारा मालूम पड़ता है कि शान्तरक्षित का काल 705-762 ई० का था और कमलशील का काल 713-763 ई० का था। देखिये भट्टाचार्य की पुस्तक 'Introduction to Tatwasangraha'. अनुसन्धान विद्वानों की राय है कि कमलशील 779 ई० में तिब्बत पहुँचे थे और वाद–विवाद 792-794 ई०तिब्बत में हुआ था। और इसी विवाद के पश्चात् उनका मरण भी यहीं हुआ था। देखिये Minor Buddhist Texts- Introduction, Part II, ISMEO, Rome, 1958 .

शान्तरक्षित एवं कमलशील ने अनेक ग्रंथ रचयिताओं के ग्रंथों से उद्धरण किया है जिसमें दिङ्नाग, भर्तृहरि, भामह, गौडपाद, धर्मकीर्ति, कुमारिल भट्ट आदि हैं। परन्तु आप दोनों ने कहीं भी प्रभाकर या आचार्य शंकर का नाम नहीं लिया है, यद्यपि कहीं आप ने 'औपनिषद आधारित वेदान्त दर्शन' का नाम लिया है। पर कहीं भी आप ने शंकराचार्य द्वारा प्रचारित वेद–उपनिषद आधारित वेदान्त दर्शन का न निर्देश किया है न उद्धरण किया है। अतः आचार्य शंकर का काल आठवीं शताब्दी मध्यकाल के पूर्व का नहीं है।

जैनमत विद्वान अकलङ्क ने 'आत्ममीमांसा' पर टीका 'अष्टशति' एवं 'न्यायविनिश्चय' तथा 'सिद्धिविनिश्चय' में कुमारिल भट्ट का खण्डन किया है। समन्तभद्र द्वारा रचित 'आप्तमीमांसा' की टीका विद्यानन्द ने 'अष्टसाहस्री' में किया है। यहाँ कहा है कि आप ने अकलङ्क की 'अष्टशति' का अनुकरण किया है। अतः विद्यानन्द का काल अकलङ्क के पश्चात् ही है। अकलङ्क का काल आठवीं शताब्दी का है। विद्यानन्द ने कुमारिल भट्ट एवं प्रभाकर का खण्डन किया है और उनका नाम भी ग्रंथों में लिया है। उम्बेक ने कुमारिल भट्ट के श्लोकवार्तिक पर टीका लिखी है। बौद्धमत विद्वान कर्णकगोमिन ने धर्मकीर्ति के प्रमाणवार्तिक पर टीका लिखी है। अकलङ्क ने कर्णकगोमिन का खण्डन किया है। कर्णकगोमिन ने अपनी रचना में उम्बेक का नाम भी लिया है–'उम्बेकस्त्वत्राह'। अकलङ्क का समय आठवीं शताब्दी उत्तरार्ध का है और कई विद्वानों ने इस विषयपर अन्वेषण किया और यही काल निश्चय किया है। उम्बेक लिखते हैं कि कुमारिल भट्ट ने 'अनुपासित गुरु' (वह व्यक्ति जिसने अपने गुरु की सेवा ठीक तरह से नहीं किया है) का खण्डन किया है। कुछ विद्वानों का मत है कि यहाँ प्रभाकर का निर्देश है और कुमारिल ने प्रभाकर पर प्रहार किया है। अन्य कुछ विद्वानों ने कहा है कि अनुपासित गुरु किसी व्यक्ति का निर्देश नहीं करता परन्तु यह एक सामान्य कथन है।

शालिकनाथ ने 'बृहति'पर टीका लिखी है और आप प्रभाकर के शिष्य थे– 'प्रभाकरगुरोः शिष्यैः तथा यत्नो विधीयते' । शालिकनाथ कहते हैं कि प्रभाकर ने 'वार्तिकार'अर्थात कुमारिल का खण्डन किया है। और पश्चात् कहते हैं कि प्रभाकर व धर्मकीर्ति की कृतियों से भी परिचित थे। अतः प्रभाकर का काल धर्मकीर्ति के पूर्व का नहीं है। और धर्मकीर्ति की समय सातवीं शताब्दी पूर्वार्ध या मध्य भाग का है। कुमारिल

भट्ट एवं प्रभाकर दोनों समसामयिक हैं। हरिस्वामिन् ने 'शतपथब्राह्मण' पर टीका लिखी है और आप प्रभाकर का नाम लेते है–'अथवा सूत्राणि यथा विध्युद्देश इति प्रभाकराः...।' हरिस्वामिन् स्वयं रचना में कहते हैं कि आपने कलि 3740 अर्थात् 638 ई० में भाष्य की पूर्ति की थी। आप के गुरु स्कन्दस्वामिन थे। अतः कुमारिल एवं प्रभाकर दोनों ने अपनी रचना इस काल के पूर्व ही की थी। 'निरुक्त' के टीकाकार महेश्वर के गुरु स्कन्दस्वामिन थे और आप का काल सातवीं शताब्दी पूर्वार्ध था। महेश्वर ने कुमारिल रचित 'श्लोकवार्तिक' से श्लोक उद्धृत किया है— 'पीनो दिवा न भुङ्क्ते चेत्येवमांदिवचः श्रुतौ। रात्रिभोजनविज्ञानं श्रुतार्थापत्तिरुच्यते।' अतः कुमारिल भट्ट का काल कथमपि सातवीं शताब्दी प्रारम्भ काल के पश्चात् का नहीं है।

महाराजा सत्यवाक्य के राज्यभार काल में विद्यानन्द प्रसिद्ध थे। विद्यानन्द ने 'युक्त्यानुशासन', 'प्रमाण परीक्षा' एवं 'आप्तपरीक्षा' में उक्त राजा का निर्देश किया है। इस राजा का राज्याभिषेक नवम शताब्दी प्रथम चौथाई में हुआ था। 'हरिवंश पुराण' में जो 783 ई० में लिखा गया था, इसमें कुमारसेन का निर्देश है। विद्यानन्द ने कुमारसेन की कृतियों का निर्देश किया है। कुमारसेन का काल लगभग 750 ई० का था। विद्यानन्द ने वात्स्यायन के न्यायभाष्य और उद्योत्कर के 'न्याय भाष्यवार्तिक' पर प्रहार किया है। परन्तु यहाँ वाचस्पति मिश्र के 'न्यायवार्तिक तात्पर्य' टीका का निर्देश नहीं है। अतः नवम शतक काल के पश्चात् काल के नहीं हो सकते। प्रशस्तपाद भाष्यपर टीका व्योमावती (व्योमशिव द्वारा रचित) का खण्डन विद्यानन्द ने किया है और आपने जयन्त कृतियों पर टीका–टिप्पणी नहीं की। विद्यानन्द के पश्चात् काल में प्रभाचन्द्र ने जयन्त कृतियों पर टीका–टिप्पणी की है। अतः विद्यानन्द का नवम् शताब्दी पश्चात् काल का होना असम्भव है। 'आदि पुराण' जो 838 ई० में लिखा गया था इसमें विद्यानन्द का निर्देश है। इन सब प्रमाणों से सिद्ध होता है कि विद्यानन्द का समय लगभग 775 ई० से 840 ई० का था। विद्यानन्द ने 'अष्टसाहस्री' 810-815 ई० में लिखा था और सुरेश्वराचार्य ने वार्तिक उक्त काल के पूर्व ही लिख दिया था।

मण्डन मिश्र ने आचार्य शंकर का खण्डन किया है और सुरेश्वराचार्य ने मण्डन मिश्र की 'ब्रह्मसिद्धि' का खण्डन किया है। सुरेश्वराचार्य ने ब्रह्मदत्त के विचारों पर भी आलोचना की है। आप कहते हैं कि ब्रह्मदत्त 'जरणमायावादी' हैं और गौडपादाचार्य एवं आचार्य शंकर 'सक्षणमायावादी' है। सुरेश्वराचार्य ने ब्रह्मदत्त के ग्रंथ से कुछ पंक्तियों का उद्धरण किया है। आचार्य शंकर ने भी इनके मत का खण्डन किया है। देखिये ज्ञानामृत द्वारा रचित 'विद्यासुरभि'। अमलानन्द ने कल्पतरु (भामती पर टीका) में कहा है 'भाष्ये स्थितप्रज्ञ लक्षणनिर्देशोजीवन्मुक्ति साधक उक्तः। तत्र स्थितप्रज्ञः साधको न साक्षात्कार–वानिति मण्डनमिश्रैरुक्तं दूषणमुद्धरति–स्थितिप्रज्ञश्चेति।' अर्थात् मण्डनमिश्र ने शंकर मत का दूषण किया है। मंडन मिश्र के टीकाकार शङ्खपानी लिखते हैं 'भगवत्पादीयमतमुप–न्यस्यति ये त्विति। तद् दूषयति–तंदिति।' मण्डन मिश्र ने शंकर मतों का दूषण किया है। बृ. उप. भाष्यवार्तिक में सुरेश्वराचार्य ने मण्डन मिश्र का खण्डन किया है। आनन्दगिरि कहते हैं '.....मण्डनादीनां तद् व्याख्यामुत्थापयति-अन्ये त्विति।' नैष्कर्म्यसिदि में मण्डन मिश्र का का खण्डन है। यथा.... 'केचित् स्व संप्रदाय बलावष्टम्भादाहुः।' विधिविवेक' और 'विभ्रमविवेक' में कुमारिल भट्ट के मतों की पुष्टि

की है और प्रभाकर का खण्डन किया है। तथा 'ब्रह्मसिद्धि' में कुमारिल भट्ट के श्लोकवार्तिक से उद्‌धरण किया है। अतः मण्डन मिश्र का समय आचार्य शंकर और सुरेश्वराचार्य का समसमय था। कुमारिल भट्ट काल के पूर्व काल का नहीं है। उम्बेक ने श्लोकवार्तिक पर टीका लिखी है एवं आप ने मण्डन मिश्र के 'भावनाविवेक' पर भी टीका लिखी है। अतः उम्बेक का समय मण्डन मिश्र के पूर्वकाल का नहीं है। इन दोनों में कम से कम 50 वर्ष का अन्तर है। उम्बेक ने मण्डन मिश्र के कई अन्यतन पाठों का निर्देश किया है। इससे यही जाना जाता है कि इन दोनों में अन्तर 50 वर्ष का होना आवश्यक है।

यह कहा जाता है कि कुमारिल भट्ट का शिष्य उम्बेक, जिन्होंने मण्डन मिश्र के 'भावनाविवेक' पर टीका लिखी है, सो व्यक्ति कन्नौज राजा यशोवर्मन (650-720 ई०) से सम्मानित हुआ था। इस कथा का आधार–'मालती माधव' में एक जगह इनका निर्देश किया गया है। कुछ अनुसन्धान विद्वानों का अभिप्राय भिन्न है। अतः इस विषय को प्रमाण में नहीं लिया जा सकता है। कमलशील ने पंजिका में एक 'उबेयक' का नाम लिया है। और सम्भवतः यह व्यक्ति उम्बेक ही हो।

आठवीं शताब्दी में कमलशील ने पञ्जिका में उम्बेक के 'तात्पर्यटीका'(श्लोक वार्तिक पर टीका) से लम्बा उद्‌धरण किया है। अतः कमलशील को उम्बेक की कृतियाँ मालूम थी और उम्बेक आठवीं शताब्दी उत्तरार्ध के पश्चात् काल के नहीं थे। 'अकलङ्क ग्रंथ–त्रयम्' में जैन विद्वान अकलङ्क का समय आठवीं शताब्दी उत्तरार्ध का होना निश्चित किया है। यहाँ अनेक प्रमाण दिये गये हैं। अकलङ्क ने बौद्धमतानुयायी धर्मकीर्ति एवं कर्णकगोमिन का खण्डन किया है। कर्णकगोमिन ने उम्बेक का नाम निर्देश किया है। अतः उम्बेक का समय कर्णकगोमिन के पूर्वकाल का है। यह देखा जाता है कि अकलङ्क ने कर्णकगोमिन का निर्देश किया है, कर्णकगोमिन ने उम्बेक का निर्देश किया है, उम्बेक ने मण्डन मिश्र पर टिप्पणी की है और मण्डन मिश्र ने शंकर पर दूषण किया है। अकलङ्क का समय आठवीं शताब्दी उत्तरार्ध का है एवं धर्मकीर्ति का काल सातवीं शताब्दी ई० का पूर्वार्ध तथा आचार्य शंकर का समय सातवीं शताब्दी उत्तरार्ध या आठवीं पूर्वार्ध का होना निश्चित होता है।

कांची कामकोटिमठ का प्रचार है कि 'जिन विजय', जैन अभिलेख, (यह अदृष्ट, अप्राप्य एवं जैन मत विद्वानों से अश्रुत पुस्तक) एवं 'बृहत शंकर विजय' (यह अदृष्ट व अप्राप्य ग्रंथ) में कहा है कि कुमारिल भट्ट ने चौबीसवें तीर्थङ्कर महावीर के पास अध्ययन किया और यहाँ कुमारिल भट्ट की जन्म काल तिथि का उल्लेख करता है। चूँकि कुमारिल भट्ट और आचार्य शंकर समकालीन थे, ये तिथि काल–निर्णय में सहायक हैं। कहे जाने वाले 'जिनविजय' में कहा है– 'तृषिवारस्तदापूर्णे भर्त्याक्षौवाममेलनात्'। अर्थात 7702 की संख्या उपलब्ध होती है और यह युधिष्ठिर संवत (जैनियों का) 2077 बन जाती है यानी 557 ईसा पूर्व। 'बृहत्–शंकरविजय' में कहा है कि कुमारिल भट्ट आचार्य शंकर से 48 वर्ष बड़े थे। अर्थात् आद्यशंकराचार्य का जन्म वर्ष 509 ईसा पूर्व होता है।

यदि कुमारिल महावीर के समसामयिक थे तो कुमारिल बुद्ध के भी समसामयिक थे। बौद्ध मत ग्रंथ 'दिघनिकाय' एवं 'मज्जिम निकाय' में स्पष्ट कहा है कि बुद्ध देव को मालूम था कि महावीर जीवित थे और ये दोनों समसामयिक काल के हैं। इसी प्रकार

जैनमत अभिलेखों में महावीर के समय में जो राजाओं का नाम दिया है सो सब बौद्धमत अभिलेखों में पाये जाते हैं। परन्तु कुमारिल भट्ट ने बौद्धसिद्धांतों में कालान्तर में जो भिन्न-भिन्न वाद एवं शाखाएँ प्रचलित हुई थीं, उन्हीं वादों का खण्डन किया था। अर्थात् बुद्ध के कई शताब्दी पश्चात् ही कुमारिल भट्ट जीवित थे। इस त्रुटि को ठीक करने हेतु अब कांची कामकोटि मठ प्रचारक कहते हैं कि बुद्ध और महावीर के बीच का अन्तर कई शताब्दी का है। कुमारिल भट्ट ने बौद्ध मत का जोरदार शब्दों में खण्डन किया है और जैनमत का खण्डन सामान्य ही रहा। कुमारिल भट्ट बौद्धवादों और उनकी शाखाओं के सिद्धान्तों से पूर्ण परिचित थे। और आपने मतवादों का पूर्ण अध्ययन भी किया था। यदि कुमारिल भट्ट महावीर के पास अध्ययन किये होते तो वो उन वादों से पूर्ण परिचित होते और उनका भी खंडन किये होते। कुमारिल भट्टने समन्तभद्र के लेखनों पर प्रहार किया था। समन्तभद्र महावीर के कई शदाब्दी के पश्चात् काल में थे। महावीर के समसामयिक कुमारिल भट्ट किस प्रकार समन्तभद्र का खण्डन कर सकते थे? जैन विद्वान अकलङ्क एवं विद्यानन्द भी कुमारिल भट्ट के इन खण्डनों से परिचित थे। कुमारिल भट्ट ने बार-बार दिङ्नाग के लेखों पर प्रहार किया है। वात्स्यायन रचित 'न्याय भाष्य' पर विद्यानन्द ने प्रहार किया है। न्याय भाष्य में जैन विद्वान भद्रबाहु के 'दश वैकलिक निरुक्ति' का खण्डन है। यह भद्रबाहु के एक दो शताब्दी पश्चात् काल के है। ये सब लेखनी–प्रहार किस प्रकार कर सकते हैं, यदि कुमारिल भट्ट एवं महावीर समसामयिक काल के होते?

कुमारिल भट्ट दिङ्नाग, समन्तभद्र, कालिदास, विन्ध्यवासिन, भर्तृहरि आदि की रचनाओं से परिचित थे। महावीर के समसामयिक काल के कुमारिल भट्ट किस प्रकार उन अभिलेखों से परिचित होते? 'मणि मजंरी' में कहा है–'कुमारस्तु तदा भेजे बौद्धं तन्मत वित्तये'। अर्थात बौद्ध मत के अध्ययन के लिए, कुमारिल भट्ट ने बौद्धमत विद्वान का आश्रय लिया। कुछ शंकरविजयों में भी इस कथन की पुष्टि मिलती है। यह विषय 'जिनविजय' के विरुद्ध है। जैनमत विद्वानों (दिगम्बर एवं श्वेताम्बर) से पूछ–ताछ की गयी और अनेकों ने इस कहे जाने वाले 'जिनविजय' का नाम भी नहीं सुना है। कई प्राचीन पुस्तकालयों का सूची पत्र भी देखा गया और कहीं इसका नामोनिशान नहीं पाया गया। महावीर के चरित्र से सम्बन्धित कई पुस्तकों का परिशीलन किया गया और कहीं भी इस कथन (कुमारिल भट्ट ने महावीर के पास अध्ययन किया था) का निर्देश या चर्चा नहीं मिली। यदि कुमारिल ने महावीर के समसामयिक होते हुए भी जैन मत का खण्डन किया था तो क्यों चौथी या पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व काल में जैन विद्वानों ने खण्डनों का उत्तर नहीं दिया? अतः निःसंदेह कहा जा सकता है कि कुमारिल भट्ट और महावीर समसामयिक नहीं थे।

कुमारिल ने कालिदास (ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी काल के पूर्व नहीं) से उद्धरण किया है, समन्तभद्र के (ईसा पश्चात प्रथम शताब्दी काल) मतों पर खण्डन किया है, भर्तृहरि के (पाँचवीं शताब्दी ई० के पूर्व नहीं) वाक्यपदीय से उद्धरण किया है, विन्ध्यवासिन (पाँचवीं शताब्दी ई०) से उद्धरण किया है, दिङ्नाग मतों का (छठवीं शताब्दी ई० पूर्वभाग) खण्डन किया है, धर्मकीर्ति (सातवीं शताब्दी ई०) मतों का खण्डन किया है। अतः यह निश्चित है कि सातवीं शताब्दी ई० अन्त तक कुमारिल भट्ट जीवित थे। अकलङ्क ने (आठवीं शताब्दी उत्तरार्ध) कुमारिल का खण्डन किया है, कमलशील (आठवीं

शताब्दी उत्तरार्ध) ने कुमारिल का निर्देश किया है, शान्तरक्षित (आठवीं शताब्दी ई० मध्यभाग) ने कुमारिल पर अपने लेखों से प्रहार किया है। हरिस्वामिन (638 ई०) ने कुमारिल भट्ट के समसामयिक प्रभाकर का निर्देश किया है। एवं महेश्वर जो हरिस्वामिन के समसामयिक थे उन्होंने भी कुमारिल का निर्देश किया है। अकलङ्क ने कर्णकगोमिन का निर्देश किया है और कर्णकगोमिन ने उम्बेक का निर्देश किया है। उम्बेक ने मण्डन मिश्र पर टिप्पणी की है तथा मण्डन मिश्र ने शंकर मत पर दूषण किया है। अतः कुमारिल भट्ट सातवीं शताब्दी ई० पश्चात् काल के नहीं हैं। यह निश्चित है कि कुमारिल भट्ट सातवीं शताब्दी अन्त तक जीवित थे। यह निस्सन्देह है कि आचार्य शंकर एवं सुरेश्वाराचार्य का काल कुमारिल भट्ट काल के पूर्व नहीं है। अतः आचार्य शंकर का काल कथमपि सातवीं ई० के पूर्व का हो नहीं सकता है।

21. पाटलीपुत्र एवं स्रुघ्न
(750-756 ई० की घटना)

सूत्रभाष्य 2-1-18 में उल्लेख है– 'नहि देवदत्तः स्रुघ्न पाटलीपुत्रवासिनो '। इतिहास द्वारा मालूम पड़ता है और जिसकी पुष्टि बौद्ध ग्रंथों में और चीनी यात्री के लेखों में पाया जाता है कि 750-756 ई० में गंगा नदी की बाढ़ से सारा नगर डूब गया और पाटलीपुत्र प्राचीन शहर न रहा। चीनी रिकार्डो में नदी का नाम 'Holung' कहा है और कनिङ्घम ने इसे गंगा मान लिया। आचार्य शंकर के समय यह एक जागता विख्यात नगर था। कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि इस बाढ़ से सारा पाटलीपुत्र का नाश नहीं हुआ था। क्यों कि गंगा तट से पाटलीपुत्र आठ मील (एक योजन) दूर पर था। पुरातत्वविभाग रिकार्ड से मालूम पड़ता है कि गंगाबाढ़ से केवल एक मील जमीन डूब गयी थी।(देखिये Arch. Survey of India Report, Vol XI) अनुसन्धान विद्वानों की राय है कि आचार्य शंकर ने पाटलीपुत्र का निर्देश किया है, वह निर्देश पाटलीपुत्र नगर का मुख्यत्व खो जाने पर भी हो सकता है पर जीता–जागता नगर भी हो तब भी हो सकता है और इन दोनों शहरों का नाम साधारणतया लिया गया है। चीनी यात्री हुवन च्वाङ्ग ने 629-645 ई० में भारत भ्रमण किया था। वह पाटलीपुत्र भी गया था, लिखता है,–'Although it has been long deserted,its foundation walls still survive.' स्रुघ्न के बारे में कहता है,–'It is deserted although its foundations are still strong.' इससे प्रतीत होता है कि सातवीं शताब्दी में दोनों नगरों ने उतना मुख्यत्व प्राप्त नहीं किया था जो पूर्व कालमें प्रसिद्ध था। नवम शतक के वाचस्पति मिश्र एवं जैन विद्वान विद्यानन्द ने भी पाटलीपुत्र का निर्देश किया है। थानेश्वर के समीप यमुनातट पर एक गाँव स्रुघ्न सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में विख्यात था। पतंञ्जलि ने महाभाष्य में स्रुघ्न एवं पाटलीपुत्र का नाम लिया है। वर्तमान काल में सुघन के नाम से गाँव मात्र बच गया है। अतः आचार्य शंकर के समय के बारे में ऐसे सन्देहास्पद विषयों के आधार पर निर्णय देना उचित नहीं है।

22. शिवभुजङ्ग स्तोत्र एवं शिवानन्दलहरी स्तोत्र

दक्षिण भारत के कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि आचार्य शंकर द्वारा शिवभुजंगस्तोत्र में (तेरहवाँ श्लोक) शिरुतोन्डर नायन्मार एवं इय्यरपगै नायन्मार या सुन्दर मूर्ति का नाम लेने से आचार्य का काल सातवीं–आठवीं शताब्दी का होना निश्चित होता

है, चूँकि ये दोनों नायन्मार सातवीं शताब्दी ई० के थे। उक्त श्लोक में कहा है–'तथा हि प्रसन्नोऽसिकस्यापि कान्तासुतद्रोहिणो वा पितृद्रोहिणों वा'। 'कांताद्रोही को इस इय्यरपगैनायन्मार या सुन्दरमूर्ति का संकेत करने का विषय कहते हैं और 'सुतद्रोही' को 'शिरुतोन्डनायन्मार' नाम होने का विषय कहते हैं तथा पितृद्रोही को चन्डेश नायन्मार कहते हैं। शेक्कियार (बारहवीं शताब्दी ई०) द्वारा रचित "पेरिय पुराणम्" में तीन नायन्मारों का नाम लिखा है जिन्होंने अपनी अपनी पत्नी, पुत्रों के प्रति दुश्मनी प्रकट की थी यथा,– कलर सिंघ नायनार, कलिकाम्बा नायनार, कुङ्गिलियकलै नायनार। सुन्दर मूर्ति नायनार (नवम शतक ई०) द्वारा रचित 'तिरुतोन्डर तोगै' में इनका नाम लिया है। एक पद जो 'कान्तासुतद्रोही' है, उसे विभक्त करके दो पद होने के गलत विषय को स्वीकार करके उक्त प्रमाण दिया गया है। 'कस्यापि' पद देखिये–यह षष्ठी एक वचन पद है, इसे दो व्यक्ति होने का विषय स्वीकार करना गलत है। 'कान्तासुतौ– कान्ता च सुतश्च, कान्तासुतयोः द्रोही, कान्तासुतद्रोही, तस्य कान्तासुतद्रोहिणः। यह विग्रह वाक्य है। कान्तासुत के प्रति द्रोह कथा अनेक मिलती हैं। किस आधार पर कहा जाता है कि यह नायन्मार का ही संकेत करता है ? इसी प्रकार शिवानन्दलहरी (63श्लोक) में आचार्य शंकर ने कन्नप्प नायनार का संकेत किया है, ऐसा भी कुछ विद्वान कहते हैं। सुन्दरमूर्ति एवं शिरुतोन्डर ऐतिहासिक व्यक्ति हैं और ये स्वयं प्रख्यात थे। चण्डेश एवं कन्नप्पा का नाम शेक्कियार ने 'पेरिय पुराणम् 'में वर्णन करके इन्हें प्रख्यात बनाया। शेक्कियार का काल बारहवीं शताब्दी ई० का है और आचार्य शंकर के कई शताब्दी पश्चात् का है। अतः इसे प्रमाण में नहीं लिया जा सकता है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त उद्धरण बड़े महत्व के हैं क्योंकि इनसे निस्संदेह पूर्णतया सिद्ध होता है कि आचार्य शंकर का समय उन बौद्ध पण्डितों के पश्चात ही होना चाहिए जिनका उद्धरण आचार्य शंकर ने स्वयं किया है। उपर्युक्त निर्देशितकाल सूची में सातवीं शताब्दी ई० मध्यभाग ही (धर्मकीर्ति का तिथिकाल) अन्तिम दीखता है और आचार्य शंकर का आविर्भाव काल इसके पूर्व कथमपि नहीं हो सकता। आयार्य शंकर कुमारिल भट्ट से भेंटकर पश्चात् मण्डन विश्वरूप मिश्र के वाद–विवाद के लिए मिलने गये। अतः कुमारिल भट्ट का तिथिकाल निश्चित करना मुख्य विषय है। देखिये उपर्युक्त क्रम संख्या 20– कुमारिल भट्ट।

3. आन्तरिक प्रमाण—अन्तिम अवधि—श्री वाचस्पति मिश्र

'पञ्चपादिका' (पद्मपादाचार्य रचित) के पश्चात् शांकरभाष्य के सब से प्राचीन टीकाकार वाचस्पति मिश्र हैं (भामती टीकाकार)। आपने षड् दर्शनों पर भी ग्रंथरचना की है। आचार्य शंकर के सिद्धान्तों को समझने के लिए अनिवार्य एवं आवश्यक ग्रंथ वाचस्पति मिश्र का शंकर भाष्य पर टीका 'भामती' है। इन्होंने मण्डन मिश्र कृत ब्रह्मसिद्धि ग्रंथ पर 'ब्रह्मतत्वसमीक्षा', ईश्वरकृष्ण रचित सांख्यकारिका पर 'तत्वकौमुदी', पतंञ्जलि योग दर्शन पर 'तत्व वैशारदी', न्याय दर्शन पर 'वार्तिक तात्पर्य टीका', पूर्वमीमांसा दर्शन पर 'न्यायसूचीनिबन्ध', कुमारिल भट्ट मत पर 'तत्व विन्दु' तथा पूर्वमीमांसक मण्डन मिश्र के विधिविवेक पर 'न्यायकणिका' नाम की टीकाओं की रचना की है। यद्यपि पाँच दर्शनों की व्याख्या में तत्तत् सिद्धान्तों का निष्पक्ष भाव से समर्थन किया है, तथापि वाचस्पति

मिश्र का प्रधान लक्ष्य आचार्य शंकर का अद्वैत सिद्धान्त है, और इसे सभी प्रामाणिक मानते हैं। 'न्यायसूची निबन्ध' नामक ग्रंथ में वाचस्पति मिश्र ने रचना काल दिया है। यथा–'न्यायसूचीनिबन्धोऽयमकारि विदुषां मुदे। श्री वाचस्पतिमिश्रेण वस्वङ्क वसुवत्सरे' अर्थात् 898 विक्रम संवत या 841 ई० । प्रायः अनुसन्धान विद्वानों का भी अन्तिम अभिप्राय यही है। शांकर भाष्य पर 'भामती' टीका 841 ई० के आसपास रचित ग्रंथ है। आचार्य शंकर के जन्म समय की यही (नवम शताब्दी ई० का मध्यभाग) अन्तिम अवधि है। अर्थात धर्मकीर्ति का काल सातवीं शताब्दी ई० मध्य भाग के पश्चात काल से वाचस्पति मिश्र द्वारा रचित 'भामती' टीका के पूर्व काल जो लगभग नवम शताब्दी ई० का मध्यकाल है, इसके बीच में ही आचार्य शकंर का आविर्भाव काल निश्चित होता है।

वाचस्पति मिश्र ने 'वस्वङ्कवसुवत्सरे' कहा है अर्थात् वसु–8, अङ्क–9, वसु–8 मिल कर 898 होता है और इसे विक्रम संवत माना जाता है, अर्थात् 898-57=841 ई० । यदि इसे शक संवत माना जाय तो 898+78=976 ई० का होता है। परन्तु यह शक संवत नहीं हो सकता क्यों कि जयन्त भट्ट द्वारा रचित 'न्याय मंजरी ' का निर्देश वाचस्पति मिश्र ने किया है। इसका समय नवम शतक के पूर्व का नहीं है परन्तु दसवीं शताब्दी उत्तरार्ध का है। परन्तु वाचस्पति मिश्र के गुरु त्रिलोचन ने भी इसी नाम का ग्रंथ 'न्याय मंजरी' की रचना की थी। देखिये Nyayamanjari of Guru Trilochana—A forgotten Work, Article in the Journal of Behar Research Society, Vol.XLI and Nyayamanjari Studies, by H. G. Narahari. । तथापि विद्वानों का अभिप्राय है कि वाचस्पति मिश्र ने जयन्त भट्ट का निर्देश किया है, यथा–'यदापि उच्यते न इति:... तदपि परिहृतमाचार्यैः ।' जयन्त भट्ट का समय दसवीं शताब्दी का है और वाचस्पति मिश्र का समय इसके पूर्व का है। राजशेखर ने वाचस्पति मिश्र के गुरु त्रिलोचन का नाम निर्देश किया है और राजशेखर का समय दसवीं शताब्दी प्रथम चौथाई का है। मण्डन मिश्र रचित विधिविवेक पर टीका वाचस्पति मिश्र ने 'न्यायकणिका' लिखी है और यहाँ निर्देश भी है। जयन्त भट्ट के पुत्र अभिनन्द ने 'कादम्बरी कथा संग्रह' नामक पुस्तक की रचना की थी और यह ग्रंथ 900 ई० में विख्यात था।

उदयनाचार्य का कार्य काल 'लक्षणावली' ग्रंथ के अनुसार 984 ई० का था। लक्षणावली में कहा है 'तर्काम्बराङ्क प्रमितेष्वतीतेषु शकान्ततः । वर्षेषूदयनश्चक्रे सुबोधां लक्षणावलीम् ।' अर्थात तर्क 6, अम्बर 0. अङ्क 9, या 906 शक या 984 ई० । उदयनाचार्य ने भी धर्मोत्तर का खण्डन किया है जो नवम् शतक के हैं। वाचस्पति मिश्र का समय उसके पूर्व ही था। कुछ विद्वानों ने उदयनाचार्य का समय 1025 ई० का भी कहा है, परन्तु ये विद्वान लक्षणावली ग्रंथ में दिये गये समय को स्वीकार नहीं करते। अतः वाचस्पति मिश्र का समय शक संवत नहीं स्वीकार किया जा सकता है। उदयनाचार्य के 'परिशुद्धि' ग्रंथ से स्पष्ट मालूम पड़ता है कि आप वाचस्पति मिश्र के पश्चात् के ही हैं। कल्याणरक्षित के अनुयायी एक व्यक्ति रत्नाकरशान्ति थे और आप को विक्रमशिला में राजा चनक ने एक पद पर नियोजित किया था। राजा चनक का देहान्त 983 ई० में हुआ। कल्याणरक्षित ने कहा है–'यदाप्यवोचत् वाचस्पतिः' । अतः वाचस्पति मिश्र का समय शक संवत होने का समय स्वीकार नहीं कर सकते। यह सब को विदित है कि विन्ध्य पर्वत के उत्तरी भाग भारत में विक्रम संवत का नाम ही सर्वसाधारण में लिया जाता

था और अधिक प्रचलित था। विन्धय पर्वत के दक्षिणभाग भारत में शक संवत प्रचलित था। अतः नवम शतक में वाचस्पति मिश्र ने विक्रम संवत ही को ध्यान में रख कर काल का निर्देश किया होगा। वाचस्पति मिश्र ने 'तात्पर्य टीका' में कहा है– 'यथाह भदन्त धर्मोत्तरः'। धर्मोत्तर एक बौद्ध विद्वान थे। आप का समय नवम शतक के पूर्वार्ध का है अतः वाचस्पति मिश्र का समय नवम शतक मध्य या उत्तरार्ध का ही है। अर्थात् 'न्यायसूचिनिबन्ध' में निर्देशित समय विक्रम संवत का ही होना निश्चित होता है। मिथिलावासी वाचस्पति मिश्र महाराजा नृग के समकालीन थे। इनके गुरु त्रिलोचन एवं मार्ताण्डतिलक स्वामी थे। शांकर भाष्य पर व्याख्या भामती एक प्रसिद्ध ग्रंथ है। मण्डन मिश्र की 'ब्रह्मसिद्धि' पर व्याख्या वाचस्पति मिश्र द्वारा रचित 'ब्रह्मतत्व समीक्षा' अब उपलब्ध नहीं है।

भास्कर ने ब्रह्मसूत्र पर भेद–अभेद मत को (ज्ञान–कर्म समुच्चयवाद) पुष्ट किया है। भास्कर ने शांकर सूत्रभाष्य पर अनेक जगह प्रहार किया है। और वाचस्पति ने भामती टीका में भास्कर मत का खण्डन किया है एवं शांकरमत की पुष्टि की है। भास्कर कहते हैं कि नवीन भाष्यकर्ता के वादों का खण्डन करता हूँ अर्थात् आचार्य शंकर का– 'सूत्राभिप्राय संवृत्या स्वाभिप्राय प्रकाशनात् व्याख्यातं यैरिदं शास्त्रं व्याख्येयं तन्निवृत्यये'। भामती में कहा है 'न च प्राणभयादिषु विकारार्थत्वायोगात्स्वार्थिको मयडिति युक्तम्' और अमलानन्द कहते हैं–'भास्करोक्तमाशंक्याह न चेति'। भामती में कहा है, 'ये तु प्रधान पूर्वपक्षयित्वानेन सूत्रेण परमात्मैवाक्षरमिति सिद्धान्तयन्ति'। अमलानन्द कहते हैं, 'भास्करस्त्व स्थूलमित्यादेर्वर्णेष्वप्राप्त निषेधत्वानुपपत्तेरधिकरणमन्यथयाभास तदनूद्य दूषयति ये त्वित्यादिना'। वाचस्पति मिश्र ने भास्कर के ब्रह्मसूत्रभाष्य से एक श्लोक भी उद्धरण किया है– 'यथाहुः कार्यरूपेण नानात्वमभेदकारणात्मना। हेमात्मना यथाभेदः कुण्डलाद्यात्मनाभिदा'। भास्कर के समय शांकर भाष्य का प्रचार व प्रसार व्यापक था। और वाचस्पति मिश्र के समय भास्कर का भाष्य भी व्यापक था। सुरेश्वराचार्य ने नैष्कर्म्यसिद्धि में ब्रह्मसिद्धि का खण्डन किया है और शांकर भाष्य की पुष्टि की है परन्तु आपने भास्कर पर टिप्पणी नहीं की। क्या भास्कर ने इस समय में अपनी रचना नहीं की थी और इनके पश्चात् काल में ही की थी, जिसका खण्डन वाचस्पति मिश्र ने किया है ?

वाचस्पति मिश्र ने 'पञ्चपादिका' के कुछ विचारों व मतों पर टीका-टिप्पणी की हैं। टीकाकार अमलानन्द 'कल्पतरु' में कहते है..... 'पञ्चपाद्यां रुढिरुक्ता, तां दूषयति ये त्विति'। वाचस्पति मिश्र अपने ग्रंथ 'तत्वबिन्दु' में शालिकनाथ के ग्रंथ 'प्रकरण पञ्चिका'(वाक्यार्थमातृका भाग) से उद्धरण किया है 'वाचस्यार्थस्य वाक्यार्थे संबन्धानुपपत्तितः। तत्संबन्धवश प्राप्तस्यान्वयात्तलक्षणोच्यते' और कहा 'आह कश्चित्' तथा उस पर खण्डन किया है। शालिकनाथ ने 'ब्रह्मसिद्धि' से उद्धरण किया है। मण्डन मिश्र आचार्य शंकर के समसामयिक व्यक्ति थे। इससे स्पष्ट मालूम पड़ता है कि आचार्य शंकर एक या दो पीढ़ी वाचस्पति मिश्र के पूर्व काल के हैं। वाचस्पति मिश्र का काल 841 ई० का है। अतः आचार्य शंकर का काल कथमपि 800 ई० पश्चात् का नहीं हो सकता।

'पंचपादिका' के पश्चात् शांकर सूत्रभाष्य के सबसे प्राचीन एवं प्रथम बार टीकाकार वाचस्पति मिश्र हैं (841 ई० भामती टीकाकार)। यदि विवाद के लिए स्वीकार करें कि

आचार्य शंकर का आविर्भाव काल 509 ईसा पूर्व का था, तो प्रश्न उठता है कि क्यों कई प्रकाण्ड विद्वानों (वैदिक मत एवं अवैदिक मत, बौद्धमत, जैन मत, आदि) ने 1200 वर्ष के बीच काल में शांकर भाष्य का निर्देश या उद्धरण या मण्डन या खण्डन नहीं किया ? यह समय था जब बौद्ध जैन विद्वान बराबर वैदिक मतों पर अपनी अपनी लेखनियों से प्रहार करते थे और क्यों शांकर भाष्य इनकी दृष्टि में नहीं पड़ा। क्या 1200 वर्ष तक शांकर भाष्य और अन्य कृतियाँ लुप्त हो गयी थीं ? यथार्थ विषय तो यह है कि आचार्य शंकर ने अपनी कृतियों मे कुछ व्यक्तियों का नाम लिया है या उनसे रचित ग्रंथों से उद्धृत किया या उनके सिद्धान्त का उल्लेख किया है या कहीं सूचित भी किया है, यथा–ईसा पूर्व काल के उपवर्ष, भर्तृप्रपंच, द्रविडाचार्य, वृत्तिकार, महायानिक (बौद्धमत) आदि एवं ईसा पश्चात् काल के पाशुपत मत, शबर स्वामी, ईश्वरकृष्ण, बौद्धमत की अन्य शाखाएँ, दिङ्नाग, उद्योत्कर, गौडपाद, प्रभाकर, सुन्दरपाण्ड्य, द्रविडशिशु, भर्तृहरि, गुणमति, धर्मकीर्ति आदि। धर्मकीर्ति का तिथिकाल सातवीं शताब्दी ई० मध्य भाग का अन्तिम काल दीखता है। अतः यह निश्चित है कि आचार्य शंकर की कृतियाँ सातवीं अन्त या-आठवीं शताब्दी ई० काल में लिखी गयी हैं।

●

(ग) समीक्षा

4. बाह्य एवं पुष्टि प्रमाण

1.प्रधान राजशेखर के तीन नाटक काव्य (गुरुवंश काव्य , आचार्य चूडामणि (भूमिका), माधवीय शंकर विजय)

गुरुवंश काव्य और आचार्य चूडामणि (भूमिका) में केरल देश के एक राजा या प्रधान राजशेखर नाम का उल्लेख है, जिसने 'शक्तिभद्र' के नाम से तीन नाटक काव्यों को आचार्य शंकर से श्रवण करके पुन: लिख लिया था। पूर्व में एक बार आचार्य शंकर नें इन तीन नाटकों को सुना था। और कुछ वर्ष पश्चात् जब ये नाटक काव्य पुस्तक खो गये या जलकर भस्म हो गये तब राजा राजशेखर बहुत दुखित हुए। पश्चात् राजा ने आचार्य शंकर को यह वृत्तान्त सुनाया। दुखित राजा को देख कर करुणामय आचार्य शंकर ने अपनी असाधारण मेधा स्मरणशक्ति से इन नाटकों के विषय को सुनाया। राजशेखर राजउपाधि है और यह उपाधि आठवीं शताब्दी के किसी कुलशेखर राजा के लिए प्रयुक्त है। माधवीय शंकर विजय में इस घटना का उल्लेख है पर यहाँ राजा का नाम दिया नहीं हैं। परन्तु गुरु वंश काव्य में राजशेखर का नाम लिया गया है। ये तीनों नाटक क्या थे सो भी नहीं मालूम पड़ता। एक भी अब प्राप्त नहीं है। अत: संदेहासप्द विषय को प्रमाण में देना उचित नहीं है।

2.कम्बोडिया का एक शिलालेख

कम्बोडिया के एक शिलालेख से यह प्रचार होता है कि आचार्य शंकर का समय नवम शतक का प्रारम्भ काल होनां चाहिए। (Refer Inscriptions du Combodge, Vol. I, Inscription of Kambuja by R. C. Majumdar.) कुछ विद्वानों ने इस विषय को स्वीकार करते हुए प्रचार भी किया। इस शिलालेख में संस्कृत भाषा में 48 पद्य हैं और 49 पक्तियाँ "खेमर" भाषा में हैं। प्रथम नौ पद्य स्तुति–प्रार्थना का है, 10 से 28 पद्य राजा इन्द्रवर्मन के प्रशंसा में है। इसी प्रकार 29 से 42 पद्य तक शिवसोम की (राजा इन्द्र वर्मन का गुरु) प्रशंसा में हैं। चम्पा के राजा इन्द्र वर्मन (राज्यकाल 877-889 ई०) के गुरु शिवसोम थे। कम्बोज के राजा जयवर्मन II के (802-869 ई०)मातुल पौत्र थे। जयेन्द्राधिपति वर्मन (राजा जयवर्मन II के मामा) के पौत्र राजा इन्द्रवर्मन थे। अन्य एक शिलालेख में (Sdok Thom) शिवसोम को इन्द्र वर्मन का गुरु कहा है। इस शिलालेख का उद्देश्य अन्तिम पद्य में कहा गया है, जो सब अस्पष्ट है। खेमर भाषा आलेख में प्रथम भगवान भद्रेश्वर की स्तुति है और अन्त में कहा गया है कि गुरु शिवसोम ने इस भगवान का प्रतिष्ठा-कार्य संपन्न कराया था। इनका समय नवम शतक था। यह शिलालेख उस समय का रिकार्ड करता है जब एक शिवसोम ने शिवमन्दिर का शिलान्यास किया था। शिलालेख का काल 878 ई० से 887 ई० के बीच का है। प्रो० के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री का अभिप्राय है कि यह आचार्य शंकर को ही निर्देश करता है (देखिये JOR- Vol XI)।

शिलालेख (39 वाँ पद्य) में कहा है—'येनाधीतानि (धीप्तानि) शास्त्राणि भगवच्छंकराह्वयात्, निश्शेष सरिमृर्द्धालि (मूर्धालि) मालालीढांघ्रिपंकजात् ।' और यहाँ भगवत शंकर शब्द के प्रयोग से आद्य शंकराचार्य होने का अभिप्राय कुछ विद्वान रखते हैं । पर इस शब्द की सूचना यथार्थ है या नहीं, यह सिद्ध नहीं हुआ है । चतुराम्नाय शांकरमठ के मठाध्यक्ष 'शंकराचार्य' के नाम से संबोधित किये जाते हैं, इस परम्परा के आचार्यों में से किसी अन्य आचार्य का संकेत भी यह शिलालेख कर सकता है । आद्य शंकराचार्य के शिष्यों में कहीं भी शिवसोम नामक शिष्य का उल्लेख नहीं है । आधुनिक इतिहासवेत्ता, पुरातत्व पण्डित और पाश्चात्यविद्योपासक इसी मत में आस्था रखते हैं ।

इस शिलालेख में (32वाँ पद्य) शिवसोम के बारे में कहा है– 'शस्त्रार्णवं पिबन् कृत्स्नं स्तम्भयन् रागभूभृतम् । यः सदा दक्षिणाचारः कुम्भयोनिर्ि्वापरः ।।' इससे स्पष्ट मालूम पड़ता है कि शिवसोम एक तांत्रिक थे । आगे यह कहा है 'तर्क काव्यादि संभूतामिद्धबुद्धिमवाप यः । पुराण भारताशेष शैव व्याकरणादिषु । शास्त्रेषु कुशलो योऽभूत तत्कारक इव स्वयम्' । इससे प्रतीत होता है कि शिवसोम तर्क, काव्य, पुराण, महाभारत, एवं पाणिनीय व्याकरण (शैव व्याकरण कहा है) के विद्वान थे । यहाँ अद्वैतवेदान्त के बारे में कुछ कहा नहीं है । संन्यासाश्रम के लक्षण, गुण-विशेषण का भी कहीं संकेत नहीं है । क्या आचार्य शंकर ने अद्वैत वेदान्त नहीं पढ़ाया था ? शिलालेख के अनुसार शिवसोम एक तान्त्रिक थे । शिवसोमके आचार्य शंकर का शिष्य होने का विषय सन्देहास्पद है । इसी शिलालेख में आगे कहा है 'सर्वविद्यैकनिलयो वेदविद् विप्रसम्भवः शासको यस्य भगवान रुद्रो रुद्रइवापरः', अर्थात् शिवसोम के गुरु ब्राह्मण कुल से आये हुए और रुद्र के समान भगवान रुद्र थे । पूर्व में गुरु का नाम भगवान शंकर कहा गया है और अब भगवान रुद्र कहा गया है । पद्य 44 में भगवान् भद्रेश्वर का नाम है । इससे स्पष्ट मालूम होता है कि शंकर एवं रुद्र दोनों भगवान शंकर का नाम है और ये दोनों आद्य शंकराचार्य के द्योतक भी नहीं हैं । यही कहना उचित है कि भगवान शंकर के कृपाकटाक्ष से विद्या प्राप्त की थी । विवरण के लिए देखिये 'कम्बोज का शिला लेख'—आर. सी मजुमदार ।

3. केरळोत्पत्ति

केरळोत्पत्ति में कहा गया है कि आचार्य शंकर का जन्म कलियुग 3501 वर्ष अर्थात् 400 ई० में हुआ था । केरल देश का इतिहास केरळोत्पत्ति मलयालम भाषा में लिखी पुस्तक है । दन्त कथा है कि इस पुस्तक के रचयिता आचार्य शंकर स्वयं थे । यह भी सुनाया जाता है कि आचार्य शंकर ने नर्मदावासी गुरु गोविन्द भगवत्पाद की आज्ञा पर इस ग्रंथ की रचना की थी । इस पुस्तक में 24,000 पद्य हैं । यहाँ कहा गया है कि आचार्य शंकर 'कैप्पिल्लि' घराने के थे और इनका जन्मस्थल कालटी है । आचार्य को गोलक भी कहा है । अर्थात् पति वियोग के बाद जब कोई नारी अन्य पुरुष संसर्ग से अपने बच्चे को जन्म देती है, उसे गोलक पुत्र कहते है । यहाँ मार्के की बात है कि आनन्दगिरि शंकरविजय, मणिमंजरी, बौद्ध जातक कथा, आदि में आचार्य को गोलक कहा है । कांची कामकोटि मठ के आद्य शंकराचार्य का पाँचवाँ अवतारी महापुरुष अभिनव शंकर (38 वाँ मठाधीश–788 ई०) का जन्मस्थल चिदम्बर और जन्म गोलक कहा गया

था। पतिवियोग के तीन वर्ष उपरान्त वशिष्ठा ने शंकर बालक को जन्म दिया। केरलोत्पत्ति में माता का नाम महादेवी कहा है । आचार्यशंकर ने गोलक जन्म छिपाने के लिए यह ग्रंथ लिखा था। यहाँ यह भी कहा गया है कि कुमारिल भट्ट ने केरल देश में बौद्ध विद्वानों के साथ वाद-विवाद किया जो विषय इतिहास एवं अन्य प्रमाणों के विरुद्ध है। आचार्य शंकर की आयु 38 वर्ष की कही है। आचार्य शंकर का जन्म राजा चेरु पेरुमान के समय में होने का भी उल्लेख है। इतिहास बताता है कि राजा चेरु पेरुमान ने 'मक्का' की यात्रा की थी और इस राजा की कब्र मक्का में है। और यहाँ के शिलालेख से मालूम होता है कि 216 हिजरी यानी 838 ई० का काल था। पूर्व में कहा कि आचार्य का जन्म 400 ई० में हुआ था सो इस प्रमाण से यह कथन भूल सिद्ध होता है। ऐसे अनेक अनर्गल अग्राह्य विषयों से भरी यह पुस्तक है । के. टि. तेलङ्ग, स्वेल, सुब्बाराव, एम. भाष्याचार्य , प्रो० नकमुरा, डॉ० कुञ्जुणिराजा, आदि विद्वानों ने इस पुस्तक के विमर्श में यह सिद्ध किया है कि यह अप्रामाणिक पुस्तक है। के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री लिखते हैं—'The Kongu desa Rajakkal Charitram and the Keralotpathi and in its various recessions has often been overrated and are in fact of very little value, so too are the numberless Sthalapuranams, mostly recently redactions of popular legends'.

4. कोल्लम् संवत्

कुछ विद्वानों की मान्यता है कि आचार्य शंकर का आविर्भाव काल 'कोल्लम् संवत्' से सम्बन्धित है। कोल्लम् संवम् का प्रारम्भ समय 825 ई० का कहा जाता है क्योंकि कोल्लम् (आधुनिक क्विलान शहर) नगर की नींव 825 ई० में डाली गयी थी। कुछ शासन है (Mampalli Copper plate of Sri Valluvan Kote और Kollam Rameswaram Stone Inscription of Rama Kulashekhara) जो कोल्लम शहर से दिया गया था। अतः कोल्लम् संवत् को आचार्य शंकर से सम्बन्धित करना गलत है । कोल्लम् संवत् के बारे में अनुन्धान विद्वानों की राय है कि 'origin still remains a mystery.' । अब यह भी प्रचार किया जाता है कि आचार्य शंकर के निर्याण पश्चात् (820 ई०) पाँच वर्ष बाद ही कोल्लम् संवत् का प्रारम्भ हुआ। यह असम्भव है। निर्याण काल से प्रारम्भ करना ही उचित और न्याय्य है।

5. बुद्धदेव काल

चीनी यात्री हुवनच्वाङ्ग कहते हैं कि बुद्ध 400 वर्ष कनिष्क के पूर्वकाल के थे । कई इतिहास वेत्ताओं ने कनिष्क का काल प्रथम शतक ईसा पूर्व से पहिली, दूसरी और तीसरी शताब्दी ईसा के बाद निर्धारित किया है। अतः बुद्ध काल ऐतिहासिकों की मान्यता के अनुसार पाँचवी शताब्दी ईसा पूर्व का है। परन्तु अब अनुसन्धान विद्वानों ने अकाट्य प्रमाणों के आधार पर जो सब प्रमाण पूर्वकाल ऐतिहासिकों को मालूम न था, यह निश्चय किया है कि बुद्ध काल 567 या 563-487 या 483 ईसा पूर्व काल का है। बुद्ध 80 वर्ष जीवित थे, सो विषय विवादास्पद नहीं है। दृढ़ प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि महाराजा अशोक का राज्याधिरोहण वर्ष 269 ईसा पूर्व का है (राजगद्दी में अवस्थित होने

के चार वर्ष पश्चात्) । अशोक के पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य, अलक्जन्डर के भारत पर चढ़ाई के समय (326 ईसा पूर्व) जीवित थे और इनका काल निश्चित है । अतः अशोक काल इसके पश्चात् का ही है । अशोक का Rock Edict, XIII, (शिलापर राजा की घोषणा) से सिद्ध होता है कि उनका समय तीसरी शताब्दी उत्तरार्ध ईसा पूर्व का है । चूँकि अशोक ने कुछ राज्यों का नाम लिया है जो सब 600 योजन (लगभग 9 मील = एक योजन) दूर पर स्थित है । ग्रीक देश के इतिहास में तीन मगध राजाओं का नाम लिखा है-Xandramas, Sandrocottus and Sandrocryptus. Sandrocottus राज्य काल में Megasthenes (चौथा शतक ईसा पूर्व) भारत आया था । यह Sandrocottus ही चन्द्रगुप्त मौर्य है (अशोक का पितामह) । कुछ स्वमत प्रचारकों का कहना है कि मौर्यवंश की राजधानी गिरिव्रज थी न कि 'कुसुमपुरा या पाटलीपुत्र' और अशोक ने पाटलीपुत्र कहा है । राजधानी गिरिव्रज का नाम कहना भ्रमात्मक और गलत प्रचार है । मौर्यों की राजधानी गिरिव्रज नहीं था । श्रीलंका का इतिहास स्पष्ट कहता है कि अशोक की राजधानी पाटलीपुत्र थी । 'मुद्राराक्षस' नाटक में भी कुसुमपुरा या पाटलीपुत्र का निर्देश किया है । मत्स्य, वायु, ब्रह्माण्ड, भविष्य, विष्णु, भागवत, पुराणों में एवं कौटल्य अर्थशास्त्र में कहीं भी गिरिव्रज को मौर्य की राजधानी नहीं कहा है । जैसा कि कुछ स्वमत प्रचारक कहते हैं । श्रीलंका की बौद्धसूची एवं तिथिक्रम इतिहास के साथ जो सर्वमान्य, है, उसमें स्पष्ट कहा है कि अशोक के राज्याधिरोहण काल से 218 वर्ष पूर्व बुद्ध का निर्याण हुआ । अतः बुद्ध का निर्याण काल 487 ईसा पूर्व का था । इसमें 80 वर्ष (बुद्ध की आयु) जोड़ा जाय तो वह काल बुद्धका जन्म काल होगा । चीन देश (Canton) में प्रामाणिक 'Dotted Record' के आधार पर 487 ईसा पूर्व बुद्ध का निर्याण काल निश्चित होता है । बौद्ध ग्रंथ 'मज्झिम निकाय' (समगम सुत्त) और 'डिघ निकाय' (पसदिक सुत्त) से मालूम पड़ता है कि महावीर और बुद्ध समकालीन थे । और जब महावीर का निर्याण हुआ तब बुद्ध अति बृद्ध थे । महावीर का समय छठवीं शताब्दी ईसा का है, अतः बुद्ध भी इसी समय के हैं । परन्तु बौद्ध धार्मिक ग्रंथों में कहा गया है कि बुद्ध का काल 623-543 ईसा पूर्व का है । इस मत पर अन्य प्रमाणों के आधार पर सूक्ष्म विवेचन किया जाय तो कोई पक्का निर्धारण कर नहीं सकते और अनेक विप्रतिपत्तियाँ उठ खड़ी होती हैं । यहाँ मार्के का विषय है कि 1956 ई० में भारत में शाक्यमुनि गौतम बुद्ध का 25वाँ जन्म शताब्दी अत्यन्त धूमधाम से मनायी गयी थी और विश्व के बौद्ध मतावलम्बी एवं विद्वान सब इस जन्म शताब्दी समारोह में भाग लिया था ।

श्री टी. एस. नारायण शास्त्री (कांची कामकोटि मठ प्रचारक) व कुछ अन्य विद्वानों की मान्यता है कि मगस्थनीज (Megasthenes) जो चन्द्रगुप्त मौर्य (325 ईसा पूर्व) के राजदरबार में सेलुकस निकटर (Selucos Nicktor) का राजदूत था, वह व्यक्ति गुप्ताकाल के चन्द्रगुप्त या समुद्रगुप्त राजदरबार का राजदूत था, जिनका काल 300 से 600 ई० का है, न कि चन्द्रगुप्त मौर्य काल का । उनका कहना है कि मौर्य काल 325 से 188 ईसा पूर्व का है, और इस काल को सातवें शतक से पाँचवे शतक ईसा पूर्व पीछे हटाना युक्त है । उनका आधार पुराण है (देखिये कोटा वेंकटाचेलम्, विजयवाडा द्वारा रचित 'Chronology of Nepal History', reconstructed) । आगे यह भी

कहते हैं कि बुद्ध काल नवम् शतक ईसा पूर्व का है। ये सब निराधार अप्रामाणिक मनगढ़न्त युक्ति है।

उपर्युक्त निराधार व अयथार्थ मान्यता का यही अर्थ हुआ कि समस्त भारतीय सूचीक्रम, तिथिक्रम, घटनाक्रम एवं सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों को तोड़मरोड़ कर प्राप्त होने वाले ऐतिहासिक अकाट्य प्रमाणों के विरुद्ध तीन या चार शतक काल पीछे हटाना पड़ेगा। ईसा के पूर्व छठवीं शताब्दी में गान्धार (तक्षशिला), कोशल, मगध, मथुरा, काशी, आदि राजतंत्र शासन व्यवस्था वाले राज्य थे एवं मल्ल, विदेह, लिच्छवी, ाज्जी, मत्स्य, आदि गणतंत्र राज्य भी थे। कहा जाता है कि उत्तर भारत में इस समय सोलह प्रमुख राज्य थे जिन्हें 'महाजनपद' कहते थे, यथा–अंग, मगध, काशी, कोशल, विज्जी, मल्ल, कुरु, पंचाल, मच्वा, सूरसेन, अशक , अवन्ति, गन्धार, काम्भोज। कपिलवस्तु के शाक्य, मिथिला के विदेह, वैशाली के लिच्छवी, पिप्पलिवन के मोरिय, प्रमुख गणराज्यों में थे। ईरान के शासक दारा (Darius I) ने 518 ईसा पूर्व में भारत पर आक्रमण कर सिन्धु नदी के पश्चिमी भूभाग एवं उत्तरी पंजाब को अपने साम्राज्य में मिला लिया। ईसा पूर्व 326 में सिकन्दर ने आक्रमण किया। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में शक नामक विदेशी जाति का भारत पर आक्रमण हुआ और उसने मालवा, मथुरा तक कब्जा कर लिया। इनमें प्रभावशाली शासक रुद्रदामान I का था (ईसा पूर्व 180-130)। महाजनपद युग में जिन राज्यों का विकास हुआ उसमें सर्वप्रथम शिशुनाग वंश का अभ्युदय हुआ। इस वंश के प्रसिद्ध राजा बिम्बिसार तथा अजातशत्रु हुए। उनके पश्चात् वहाँ नन्द का राज्य स्थापित हुआ। इस वंश के राजा धनानन्द को पराजित कर चन्द्रगुप्त मौर्य ने ईसा पूर्व 322 में मौर्य साम्राज्य की स्थापना की। यही समय था जब परामर्शदाता कौटिल्य (चाणक्य) की सहायता मिली। 305 ईसा पूर्व में सिकन्दर के उत्तराधिकारी सेल्यूकस ने बैक्ट्रीया से भारत पर चढ़ाई की तो वह चन्द्रगुप्त मौर्य से पराजित हुआ। दोनों में सन्धि हो गयी जिसके फलस्वरूप हिरात, गंधार, मकरान् , काबुल मौर्य साम्राज्य में सम्मलित हो गये। राजदूत मेगस्थनीज मौर्य दरबार में रहने लगा। चन्द्रगुप्त मौर्य के बाद बिन्दुसार (300-273 ईसा पूर्व) राजा हुआ था। उसके पश्चात् उसका पुत्र अशोक (273-236 ईसा पूर्व) सम्राट हुआ। बौद्ध धर्म की शिक्षाओं से प्रभावित होकर अपने शासन काल में बौद्धधर्म का दूर-दूर देशों तक प्रचार किया। अशोक की मृत्यु के पश्चात् मौर्य साम्राज्य का शीघ्रता से ह्रास होने लगा तथा साम्राज्य छोटे-छोटे राज्यों में बट गया। 185 ईसा पूर्व में इस वंश का अन्तिम शासक बृहद्रथ था। ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र ने उसकी हत्या कर दी और स्वयं सिहांसन पर बैठ गया। शुंगवंश की स्थापना की और 72 ईसा पूर्व में शुंगवशं का भी अन्त हो गया। 27 ईसा पूर्वतक काण्व वंश का राज रहा और इस वंश का प्रसिद्ध शासक वसुदेव हुआ जो विष्णु उपासक था। काण्व के पतन के पश्चात् शातवाहन वंश का राज हुआ। इनको आन्ध्र भी कहते हैं। आन्ध्र देश में शातवाहन राजाओं का प्रतापसूर्य प्रखरता से चमक रहा था। प्रथम शताब्दी से 400 ई० तक इस वंश का राज्य था। इस वंश में वशिष्ठपुत्र पुलुमयी, यज्ञश्रीसत्करणी आदि प्रसिद्ध राजा भी थे। ये सब राजा 'त्रिसमुद्राधिपति' पदवी भी धारण किये थे। इनकी प्राचीन राजधानी प्रतिष्ठानपुर (पैठन) थी। पश्चात् राजधानी धान्यकटक में स्थापित की।

यह नागार्जुन का स्थल था। आन्ध्रराजा बौद्धमतानुयायी थे। शिलाशासनों द्वारा मालूम होता है कि बौद्ध भिक्षु लंका और चीन देश से आन्ध्रदेश आते थे। ईसा की प्रथम शताब्दी में 'यूचियो' की एक प्रमुख शाखा कुषाणों ने भारत पर आक्रमण किया। उनकी सत्ता पंजाब, सिन्ध, कश्मीर तथा उत्तर प्रदेश के कुछ भाग तक फैल गयी। कनिष्क इस वंश का प्रसिद्ध राजा था। इसका राज्य अफगानिस्तान, वैक्ट्रीया, यारकन्द, खोतान, तक विस्तृत था और पूर्व दिशा में पाटलीपुत्र तक विस्तृत था। कनिष्क ने बौद्ध धर्म की महायान शाखा को स्वीकार कर मध्य एशिया तक उसका प्रचार करवाया। चौथी शताब्दी ई० में एक नये राजवंश का उदय हुआ जो गुप्त वंश के नाम से प्रसिद्ध है। चन्द्रगुप्त I (320-335 ई०) इस वंश का पहला प्रसिद्ध राजा था। उसका पुत्र सभुद्रगुप्त (335-375 ई०) सम्राट हुआ। इस वंश का तीसरा प्रतापी राजा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (370-414 ई०) हुआ है। गुप्त वंशी राजा वैष्णव थे और इन्होंने यज्ञ की परिपाटी का पुनः उद्धार किया। ब्राह्मण वेदपाठ अधिक मात्रा में करने लगे। पूर्वकाल में पुराण जो सब सहिंता रूप में था सो धीरे धीरे लोप होने लगा और चतुर्थ शताब्दी में पुराणों की नवी संस्करण (उपलब्ध होने वाले प्राचीन पुराण ग्रंथों के आधार पर) एवं स्मृतियों की रचना इसी काल में हुई थी। 455-456 ई० में हूण नामक बर्बर जाति के लोगों ने पश्चिमी भाग पर आक्रमण कर दिया। सम्राट स्कन्दगुप्त (455-467 ई०) ने उनके आक्रमण को विफल कर दिया परन्तु कुछ वर्ष पश्चात हूणों का दूसरा आक्रमण तोरमाण के नेतृत्व में हुआ। हूणों ने पंजाब पर अधिकार जमा लिया। इसके पश्चात् वर्धनवंश का उदय हुआ। इस वंश का प्रसिद्ध शासक हर्षवर्धन (606-647 ई०) हुआ। हर्षवर्धन दक्षिण भारत की ओर भी बढ़ा किन्तु दक्षिण के चालुक्य वंश के पुलकेशिन II ने हर्ष की सेना को परास्त किया है।

इन प्राप्त होने वाली ऐतिहासिक घटनाओं के विरुद्ध, किस प्रकार तीन या चार शतक काल हटाया जा सकता है ? क्या तिथिक्रम एवं घटना क्रम का तोड़-मरोड़ किया जा सकता है ?

उक्त नारायण शास्त्री एवं अन्य विद्वानों की भूल भयंकर भूल है कि यूनानी राजदूत मेगस्थनीस एवं चन्द्रगुप्त मौर्य का निकट संबंध अलकजेन्डर (Alaxander) के भारत वर्ष पर आक्रमण काल से है जो 326 ईसा पूर्व का ही है। निकटर (305 ईसा पूर्व) का राजदूत मेगस्थनीस पाटलीपुत्र दरबार का राजदूत था। यह कहना कि मेगस्थनीज का काल गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त का काल था, सो ठीक नहीं है। मौर्य काल में कई वर्ष पश्चात् ही सन्धि के आधार पर यह सीमा गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त के हाथ आयी थी। गुप्तों का काल ईसा पश्चात् का ही है न कि ईसा पूर्व का। जैनमत ग्रंथ हरिवंश में कहा है कि गुप्तों का राज्य 231 वर्ष चला। अन्त में क्रूरराजा मिहिरकुल के हाथ राज्य आया और जैन विद्वान गुणभद्र लिखते हैं कि महावीर के निर्याण काल के पश्चात्(1000 वर्ष पश्चात्) मिहिरकुल पैदा हुए थे। अर्थात् गुप्ता का काल ईसा पश्चात् का है। अलबरुनी कहते हैं कि गुप्तकाल ईसा पश्चात् का है। मन्दसार शिलालेख से मालूम पड़ता है कि गुप्ता काल ईसा पश्चात् का है। वि. स्मित् का 'भारत का इतिहास', पुस्तक III, 1906 ई० में लिखते हैं 'Vishnu purana gives the outline of the history of the Maurya

dynasty with a near approach to accuracy ....Chandra Gupta Maurya' s accession to the throne of Magadha may be dated with practical certainty to 321 B.C.''

उक्त नारायण शास्त्री का कहना है कि शन्द्रकोटस (Shandracotus) व्यक्ति ही गुप्त काल का समुद्र गुप्त है और गुप्त का काल अलक्जेन्डर के आक्रमण काल 326 ईसा से पूर्व काल का है। परन्तु चीनी यात्री फाहियान जो 399 से 414 ई० तक गुप्त काल में भारत में उपस्थित था उसने अपने ग्रंथ में भारत की ऐतिहासिक घटनाओं का एवं सामाजिक स्थिति का विवरण जो सब दिया है वह विवरण गुप्तकाल का ही है, न कि मौर्य काल का। सूक्ष्मविवेचना एवं अन्य साक्ष्य के आधार पर यह निष्कर्ष पाया गया। स्कन्द गुप्त (458 ई०) राज्यकाल में हूणों का आक्रमण भारत पर हुआ था। इस घटना को किसी भी कारण से मौर्य काल का नहीं कहा जा सकता है। अतः शन्द्रकोटस अलक्जेन्डर के पडाव में आया था (326 ईसा पूर्व) और पश्चात् 305 ईसा पूर्व में निकटर का राजदूत बन गया था। सो व्यक्ति (मगस्थनीस्) चन्द्रगुप्त मौर्य काल का ही है (325 से 188 ईसा पूर्व काल)।

मौर्य वंश के राजा अशोक (चन्द्रगुप्त मौर्य का पोता) का काल 272-232 ईसा पूर्व का है। उनके Rock Edict XIII में समसामयिक पाँच व्यक्तियों का नाम भी दिया है। शिलालेख अनुसार ये सब 600 योजन (लगभग 9 मील = एक योजन) अशोक के राज्य से दूर थे। प्रचारकों का कहना है कि ये सब राज्य अशोक की राज्य सीमा के आसपास थे। जो भ्रामक है क्यों कि शिलालेख स्पष्ट है कि राज्य लगभग 5000 मील दूर थे। इन पाँच व्यक्तियों के नाम, यथा–

1. Amtiyoka या Astiyoga	अर्थात्	Antiochus Teos of Syria (Selucos Nictor's grandson)	265-246.B.C.
2. Tulmaya	अर्थात्	Ptolemy Philadalphos of Egypt	285-247 B.C.
3. Antikoni	अर्थात्	Antigonos Gonates of Macedonia	278-239 B.C.
4. Maka	अर्थात्	Magas of Ceyrine	285-258 B.C.
5. Alikaya Sundara	अर्थात्	Alexander of Epirus or Epensus	272-258 B.C.

शिलालेख में कहा है कि ये नामधारी व्यक्ति सब जीवित थे। इन सबों का काल और जीवन घटना विवरण सब दृढ़ प्रमाणों द्वारा सिद्ध और निश्चित है। इससे निश्चित हुआ का कि राजा अशोक का समय तीसरी शताब्दी इसा पूर्व का है। यदि अशोक का काल बदला जाय, जैसा कि प्रचारक कहते हैं, तो किस प्रकार उन व्यक्तियों का संबंध निश्चित किया जाय ? इतिहासवेत्ता वि. स्मित कहते हैं– 'by the subsequent establishment of the Synchronism of Chandra Gupta's grandson Ashoka with Antiochos Theos , the grandson of Selucos, the four other

Hellenistic princes (Vide Asokan Rock Edict no. XIII), the chronology of the Maurya dynasty was placed upon a firm basis and it is no longer open to doubt in its main outlines.' अतः बुद्ध काल को अयथार्थ मनगढ़न्त कारणों से कई शताब्दी पीछे हटाना भयंकर भूल है। अतएव यह सिद्ध हुआ कि बुद्ध का काल 567 से 487 ईसा पूर्व का ही है।

6. विभिन्न संवत्

टि. एस. नारायण शास्त्री रचित 'दि एज आफ शंकर' में कहा है कि भारत में 47 तरह के संवत् (विशिष्ट काल) प्रचलित थे। इनमें कलियुग 3102 ईसा पूर्व से प्रारम्भ होता है और युधिष्ठिर शक 37 वर्ष बाद प्रारम्भ होता है अर्थात् 3138 ईसा पूर्व से है। परन्तु जैन एवं बौद्धमतों के अनुसार युधिष्ठिर शक 468 वर्ष कलियुग के पश्चात् प्रारम्भ होता है अर्थात् 2634 ईसा पूर्व से। महाभारत युद्ध काल कलियुग प्रारम्भ के 36 वर्ष पूर्व था यानी 3138 ईसापूर्व। युधिष्ठिर शक एवं कलियुग के अलावा एक और संवत था– लौकिकाब्द। कहा जाता है कि यह संवत 3076 ईसा पूर्व से प्रारम्भ होता है। इन शकों में भिन्नता पायी जाती है और निश्चित रूप से कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता है। तरह-तरह के संवतों का काल निर्देश करने से एवं संवतों का नाम न लेने से अथवा लुप्त होने से समस्या जटिल बन जाती है। अपने मनगढ़न्त सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए तार्किक युक्तिवाद से इनकी पुष्टि करते हैं और यहीं से वाद–प्रतिवाद प्रारम्भ होता है। अतः इसी एक विषय के आधार पर निर्णय लेना सन्देहास्पद बन जाता है। श्री उल्लूर परमेश्वर अय्यर द्वारा रचित 'हिस्ट्री आफ केरल साहित्य' पुस्तक I में कहते हैं कि शांकर मठों में गुरुपरम्परा सूची सम्भवतः पन्द्रहवीं या सोलहवीं शताब्दी ई० में तैयार की गयी थी और इन सूचियों में परस्पर भेद भी देखे जाते हैं। निश्चित रूप से इन सूचियों के आधार पर कोई निर्णय किये जा नहीं सकते।

7. आचार्य शंकर आविर्भाव काल 509 ईसा पूर्व एवं बौद्धमत शाखाएँ

कुम्भकोण-कांची कामकोटि मठ ने आचार्य शंकर का आविर्भाव काल 509 से 476 ईसापूर्व का माना है। अर्थात् आचार्य शंकर और बुद्ध (567-487 ईसा पूर्व) दोनों लगभग समसामयिक या समीप काल के व्यक्ति हो जायँगे। बुद्ध के पश्चात् ही सौत्रान्तिक, विज्ञानवाद, शून्यवाद, योगाचार आदि ऐसी कुछ और शाखाओं (माध्यमिका-महायानिक आदि) का प्रचार और प्रसार हुआ जिनका असङ्ग, वसुबन्धु, दिङ्नाग, नागार्जुन आदि द्वारा पुष्टि की गयी थी। यह निश्चित है कि इन वादों का प्रचार सब दूसरी-तीसरी शताब्दी ई० के पूर्व नहीं, परन्तु पश्चात् काल का है। आचार्य शंकर ने इन चार मतों का दोष दिखाकर खण्डन किया है। (देखिये सूत्रभाष्य–दूसरा अध्याय, दूसरा पाद)। बौद्ध मत के मूल ध्येयों पर आधारित ये चार वाद उन्हीं का विस्तार है। आचार्य शंकर ने दिङ्नाग, गुणमति और धर्मकीर्ति, का निर्देश किया है। आचार्य शंकर का काल असङ्ग, वसुबन्धु, दिङ्नाग, गुणमति, नागार्जुन, धर्मकीर्ति आदि के पश्चात् काल का ही है। आचार्य शंकर ने कुमारिल भट्ट से भेंट भी की थी। कथमपि 650 ई० के पूर्व शंकर का आविर्भाव काल हो नहीं सकता है। बिना अनुसन्धान किये, सूक्ष्मविवेचना किये बिना एवं

अन्तरङ्ग प्रमाणों के विरोध में, कुछ पाश्चात्य विद्वान् व्हीलर, वेबर, आदि ने अपनी रचनाओं में बुद्ध के काल को कई शतक पीछे हटाया है। इन अप्रामाणिक विचारों के आधार पर अब कांची कामकोटिमठ एवं उनके प्रचारक प्रचार करते हैं कि बुद्ध का काल 20 वीं से 14 वीं शतक मध्यकाल ईसा पूर्व का है। यह सरासर गलत है। देखिये उपर्युक्त विषय संख्या पाँच में दिया गया विवरण।

बुद्ध के आविर्भाव से पहले भारत में धर्म, आचार और विचार इन तीनों क्षेत्रों में दो धाराएँ उपस्थित थीं—विचार के क्षेत्र में भाग्यवादी और बुद्धिवादी, आचार के क्षेत्र में यज्ञवादी और योगवादी और धर्म के क्षेत्र में वेदमूलक और स्मृतिपरक। इनमें परस्पर आदान प्रदान और समन्वय के प्रयत्नों के साथ इनकी भिन्नता भी बढ़ती ही गयी। साधारण रूप में इन धाराओं का उल्लेख वेद, उपनिषदों, और पुराणों में पाया जाता है। ऋक् ब्राह्मण और उपनिषद, रामायण, महाभारत एवं अन्य ग्रंथों का प्रचार-प्रसार एवं प्रभाव कई शताब्दी से समाज में था। पर कालान्तर में अनुष्ठान में तामस आ गया तथा तप, यज्ञ एवं सद्धर्म का लोप हो गया था। भारत में राजनैतिक परिस्थितियों की अपेक्षा सांस्कृतिक परिस्थितियों का साम्य और अधिक रहा है। धार्मिक और सांस्कृतिक आन्दोलन ऐसे हुए जिनका प्रभाव भारतव्यापी था और भारत एक संघटित महान् देश था। ईसा पूर्व छठवीं शताब्दी के भारत की इस विद्यमान अवस्था से असन्तुष्ट होकर ही बुद्ध ने नये 'यान' (मार्ग) की व्यवस्था की। 'ब्रह्मजाल सूत्र' में उल्लेख है कि बुद्ध के समय में 62 भिन्न-भिन्न मत मतान्तरों से देश पीड़ित था। अवैदिक मतों के कुछ प्रसिद्ध प्रचारक पुराण काश्यप, कात्यायन, मक्खाली गोशल, निगंठनाथ पुत्त आदि थे। बौद्ध धर्म में भी आरम्भ से ही तांत्रिक साधनाओं का विपुल प्रचार हो गया था। भिक्षुओं से संघजीवन के कठोर नियमों का पालन नहीं हो सका। बुद्ध के समय से ही विरोध एवं उल्लंघन आरम्भ हो गया था। वह गुप्त रूपसे अपनी काम्य इच्छाएँ पूर्ण करते थे। ऐसे गुप्त स्थल अनेक विहारो में, मठों में, शालाओं में स्थापित हो गये। इनको 'गुह्यसमाज' कहा जाता था। इसी समय 'गुह्य समाज तंत्र' की रचना हुई, शक्तितत्व का प्रवेश बौद्ध धर्म में हुआ। बुद्ध के चचेरे भाई देवदत्त ने बुद्ध के कुछ प्रचारों और सिद्धान्तों पर असहमत हो कर आप के साथ वाद-विवाद-प्रारम्भ किया और स्वयं अपने नेतृत्व में एक नये यान (मार्ग) की नींव डाल एक नया संघ प्रारम्भ किया। इस वर्ग ने बुद्ध का तिरस्कार किया और 'तथागत' (पूर्व बुद्ध) का स्वागत किया। चीनी यात्री फाहियान लिखते हैं कि पाँचवीं शताब्दी ई० में भी श्रवस्ति में देवदत्त के अनुयायियों ने गौतम का तिरस्कार किया और काश्यप बुद्ध को सम्मान दि या। देवदत्त के प्रचार यान में वैदिक मत के अनेक विषय आ जाने से कट्टर बौद्ध मतानुयायियों ने इसका तिरस्कार कर दिया। बुद्ध के समय में ही यह विरोध प्रारम्भ हुआ।

सद्धर्म के एक प्रकार से लोप हो जाने से, तामस तप और यज्ञ से समाज की आत्मा क्षुब्ध हो उठने से, मतमतान्तरों और इस मतविभेदजन्य विभ्रम के कारण ही नैतिक सदाचार और सत्य स्थापना करना बुद्ध का उद्देश्य था। बुद्ध ने चार आर्य सत्यों और अष्टाङ्गिक मार्ग का प्रतिपादन किया। यज्ञ और उपासना के द्वारा इह और पर कल्याण की शिक्षा जो दी जा रही थी, उसके सामने भाग्यवाद की चर्चा होने लगी। कल्याण के

सैकड़ों मार्ग दिखाये गये और साधारण मनुष्य सत्य का स्वरूप भूल गया। इसकी प्रतिक्रिया के स्वरूप में कालान्तर में 'मध्यममार्ग' की प्रतिष्ठा लोकसम्मत हुई। उस प्रारम्भिक काल में न तो ऐसे मन्दिर थे, न किन्ही देव-देवियों की पूजा होती थी। इसलिए 'मध्यममार्ग ' के उपदेशों को प्रश्रय मिला। कालान्तर में उसका नाम मात्र अवशिष्ठ रह गया, क्योंकि महायान संप्रदाय ने आध्यात्मिक जगत में इतने बुद्धों, बोधिसत्वों, देव-देवियों को ला बिठाया था कि किसी को 'मध्यम मार्ग' पर चलने का कष्ट करने की आवश्यकता ही नहीं रह गयी। डॉ० कणे कहते हैं कि कुछ सूत्रों द्वारा स्पष्ट ज्ञात होता है कि ईसा पूर्व छठवीं शताब्दी में कुछ लोग मन्दिरों की मूर्तियों की पूजा-सेवादि कार्य में प्रवृत्त थे। वैदिक यज्ञादि के साथ-साथ मूर्तिपूजा सेवन की धारा भी जाग उठी थी।

बुद्ध के निब्बाण के पश्चात् 'थेरस'(वृद्ध विज्ञों का संघ) लोग राजा अजातशत्रु के संरक्षण में तथा कश्यप के सभापतित्व में राजगृह में मिले और अभिधम्म, विनय और सुत्त (त्रिपिटक) का संकलन कर प्रचार किया। इसी प्रकार ईसा पूर्व 383 में वैशाली में संघ की दूसरी बैठक हुई। इस दूसरी बैठक में 'थेरस लोग' कोई अन्तिम फैसला नहीं कर सके और आपस में मतभेद के कारण दो दलों का गठन हुआ। कुछ वर्ष पश्चात् असहमत वर्ग की एक और 'महासङ्गीति' की बैठक हुई। अशोक के संरक्षण में ईसा पूर्व 241 में पाटली पुत्र में 'महासंघ' की बैठक हुई। इसी प्रकार प्रथम शताब्दी ई० में कनिष्क के संरक्षण में एक और बैठक हुई। समय-समय पर अनेक विषय क्षिप्त किये गये। ये सब उक्त बैठक महायान संप्रदाय के उदय के पूर्व हुई। कालान्तर में बुद्ध के मूल उपदेशों के वास्तविक स्वरूप में परिवर्तन भी हो गया। इनके लिए सभी पदार्थ क्षणिक हैं। इनके चार संप्रदाय हैं, जो क्षणिक पदार्थों में आधार के संबंध का विवरण प्रकट करते हैं। वैभाषिक–बाह्यार्थ प्रत्यक्षवाद (सब प्रत्यक्ष हैं और क्षणिक हैं), सौत्रान्तिक बाह्यार्थानुमेयवाद (बाह्यार्थ क्षणिक हैं और वह बुद्धि-ज्ञान से अनुमित हैं), योगाचार-विज्ञानवाद (विज्ञान अनेक हैं और उनका ही यह जगत विवर्त है), माध्यमिक-शून्यवाद (यह जगत शून्य का विर्वत है।) इनके दो संप्रदाय हैं हीनयान (स्थविरवाद, प्राचीन परम्परा, असंशोधनवादी) और महायान (महासंघिक, संशोधनवादी)।' वैभाषिक का संबंध हीनयान से है। सौत्रान्तिक का हीनयान की ओर झुकाव है। शेष दो का सम्बन्ध महायान से है। वैभाषिक एवं बुद्धकाल के प्राचीन मत में संसार और निर्वाण सत्य है। माध्यमिक मत में संसार और निर्वाण दोनों असत्य हैं। सौत्रान्तिक मत में संसार सत्य और निर्वाण असत्य है। योगाचार में संसार असत्य और निर्वाण सत्य है। कहा जाता है कि कालान्तर में मूल बौद्ध मत की अठारह शाखाएँ थीं। बुद्ध के कट्टर अनुयायियों ने उनके कहे गये मूल शब्दों का दूसरा ही अर्थ किया और वेदों को भाण्ड, धूर्त एवं निशाचरों की रचना बताया। समय-समय पर भिन्नार्थ सृष्टिकर एक नया रूप दिया था। सर्वत्र वेदनिन्दा, ईश्वरनिन्दा और अवैदिक आचारों का प्रचार करने लगे।

मौर्यों के समय में बौद्ध धर्म को राजाश्रय प्राप्त हो गया। राजा अशोक ने इसका प्रचार भी किया। ईसा पश्चात् प्रारम्भ काल से पूर्व तिब्बत, बर्मा, नेपाल, कम्बोडिया, अन्नाम्, चीन, जापान, आदि देशों में तथा अफगानिस्तान, पामीर, तुर्किस्तान, इजिप्ट, सीरिया, मेसिडोनिया, इपिरस, फिलिस्तीन, आदि पश्चिमी देशोंमें बौद्ध धर्म का प्रचार

और विस्तार हुआ। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से इन्डोनेशिया, मलाया, जावा, आदि में 'धर्मविजय' का प्रारम्भ हुआ। कुषाण राजाओं ने बौद्ध धर्म का प्रचार मध्य एशिया की सीमा में खूब किया और विहारों का निर्माण भी किया। कनिष्क के स्थापित 'महासंघ' में बौद्धों का प्रभाव एवं व्यापकता अधिक थी। कनिष्क को बौद्ध धर्म का सुधारक भी कहा जाता है। नागार्जुन ने 'माध्यमिक' सूत्र की रचना की थी। आर्यदेव ने इस पर टीका लिखी है। नागार्जुन का मूल ग्रंथ 'मूल-मध्यम-कारिका' है। आर्यदेव ने 'सत्‌शास्त्र' या 'चतुहशतक' नामक एक प्रसिद्ध ग्रंथ भी लिखा था। चन्द्रकीर्ति ने नागार्जुन कारिका पर व्याख्या लिखी है। नागार्जुन के माध्यमिक बौद्धदर्शन (शून्यवाद) के साथ 'महायान' संप्रदाय का उदय हुआ। अश्वघोष और नागर्जुन ही महायान के मूल प्रवर्तक थे। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि अश्वघोष के शिष्य नागार्जुन थे। अश्वघोष ने कनिष्क को उपदेश किया था। इसी समय बौद्ध स्पष्ट रूप से हीनयान और महायान, दो शाखाओं में विभाजित हुए। 'वैभाषिक अभिधम्म' ग्रंथ, हीनयानियों का ग्रंथ है। 'नयन प्रसादिनी' में कहा है— 'वैभाषिकानाम् सूत्र कृतो दिङ्नागस्य'। वैभाषिक व्याख्याकार दिङ्नाग और धर्मकीर्ति थे। दिङ्नाग का एक और ग्रंथ 'प्रमाण समुच्चय' है। धर्मकीर्ति का 'न्यायबिन्दु' उपलब्ध होता है। दिङ्नाग के व्याख्याकार धर्मकीर्ति थे। सौत्रान्तिक शास्त्र के संस्थापक कुमारलब्ध थे। 385 ई० में माध्यमिक सूत्र और आर्यदेव टीका दोनों पुस्तकों का चीनी भाषा में अनुवाद हुआ था। विज्ञानवाद (योगाचार) महायानों का है। 'अभिधम्मकोष व्याख्या' के रचयिता वसुबन्धु महायान में जा मिले। योगाचार के मुख्य प्रचारक असङ्ग और वसुबन्धु (दोनों भाई) थे। वसुबन्धु प्रथमतः सौत्रान्तिक शाखा के अनुयायी थे पर बाद में अपने भाई के प्रभाव द्वारा योगाचार के मुख्य प्रचारक हुए। प्रमाण ग्रंथों में उच्च है 'अभिधम्म कोष व्याख्या' ग्रंथ। एक अन्य पुस्तक है—'लंकावतार'। इसमें बुद्ध के लंकापति रावण को दिये उपदेशों की व्याख्या है। इनके पश्चात् दिङ्नाग, परमार्थ, धर्मपाल, धर्मकीर्ति , गुणमति आदि विद्वानों ने विज्ञानवाद को अपने प्रचारों से पुष्ट किया। 546 ई० में परमार्थ चीन देश भी गये।

गुप्त और वर्धन युग, वैदिक तथा बौद्ध जैन तत्वज्ञानियों का संघर्ष युग था। इसी युग में नागार्जुन, वसुबन्धु, धर्मकीर्ति, गुणमति, दिङ्नाग आदि बौद्ध विद्वानों ने बौद्धन्याय को जन्म दिया और ब्राह्मण नैयायिकों के सिद्धान्तों का खण्डन किया। सङ्गभद्र द्वारा रचित 'न्यायानुसारशास्त्र' इनका मुख्य ग्रंथ था। ब्राह्मण तार्किकों में वात्स्यायन, उद्योत्कर, प्रशस्तपाद, आदि विद्वानों ने बौद्ध तार्किकों के मतों का खण्डन करके वैदिक सिद्धान्तों की रक्षा की। पर वैदिक कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड का सयुक्तिक मण्डन किया नहीं गया। बौद्धों ने निन्दा और अवहेलना प्रदर्शित की थी उसे ध्वस्त करने के निमित विज्ञ वैदिकों की परम आवश्यकता थी। समन्तभ्द्र तथा सिद्धसेन की रचनाओं ने जैन न्याय को प्रतिष्ठित बना दिया था और श्रुति के क्रिया-कलापों पर प्रहार हो रहा था। इसी समय कुमारिल भट्ट नें वेद का प्रामाण्य अकाट्य, युक्ति तर्कों पर आधारित, पूर्णतया सिद्ध किया। वैदिक कर्मकाण्ड को उपादेय, आदरणीय, आवश्यक प्रमाणित किया। गुप्तकाल से जिस वैदिक धर्म की जाग्रति हुई उसकी पूर्णरूप से कुमारिल-आचार्य शंकर काल में अभिव्यक्ति हुआ। फाहियान रचित पुस्तकों से जाना जाता है कि पाँचवीं शताब्दी ई० में

भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार अधिक था। हुवन-च्वाङ्ग लिखते हैं कि सातवीं शताब्दी में बौद्धमत की अवनति हो रही थी और अन्य वैदिक मतों का प्रचार हो रहा था। बाण-हर्षचरित पुस्तक इस विषय की पुष्टि करती है।

नागार्जुन ने अपने स्थान श्रीपर्वत पर अपने मंत्र-तंत्र का केन्द्र बनाया। महायान के अनुयायी पाँच सम्प्रदाय के थे। इनमें चार आन्ध्र सम्प्रदाय और पाँचवाँ वैपुल्यवाद ही 'वज्रयान' का मूल माना जाता है। वज्रयान का मूलग्रंथ 'मंजुश्री मूलकल्प' वैपुल्य सूत्र के नामसे प्रचलित है। वैपुल्यवादियों नें वाममार्ग की नींव डाली थी। वज्रयान में पाँच ध्यानी बुद्ध और उसकी शक्तियों से बोधिसत्व और बुद्ध शक्तियों के अपने परिवार खड़े हो गये। इसे वज्रयान नाम मिला। वज्रयान के साथ-साथ 'नाथ' और 'सिद्ध' भी जोर पकड़ रहे थे। पूर्वी भारत में वज्रयान तथा नाथ-सिद्धों को पश्चिम में देखा जाता था। नाथ बौद्धतंत्रों के हिन्दूरूप हैं। नाथ सिद्ध वज्रयानी केन्द्रों में भी छा गये। इनका मार्ग 'सहजयान' कहलाया। दक्षिण में महायान के अन्तर्गत मंत्र–तंत्र तथा वज्रयानीय, वाममार्ग की वृद्धि होती रही। वज्रयानीय तारा देवी का मन्दिर नालन्दा में बन ही गया और वज्रयानीय मत का अध्ययन होने लगा। इसके फलस्वरूप दक्षिण भारत में कुछ जगह तारा देवी के मन्दिर स्थापित हुए जिनमें कांची नगर का तारा देवी मन्दिर प्रसिद्ध था (वर्तमान कामाक्षी मन्दिर)। वर्तमान कामाक्षी मंदिर (कांची पुर) पुरा काल में बुद्धमन्दिर था और इस मन्दिर में अनेक बुद्ध मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। इसके पूर्व यह जैन मत का धर्म देवी मन्दिर था। चीनी यात्री हुवन-च्वाङ्ग ने सातवीं शताब्दी पूर्वार्ध में भारत में भ्रमण किया था और आप कांची भी आये थे। आप लिखते है कि कांची में एक सौ से भी अधिक बुद्ध विहार थे जहाँ करीब 10, 000 भिक्खु वास करते थे। कांची में अन्य मतों के 80 देव मन्दिर भी थे जिनमें अधिकांश दिगम्बरों के ही मन्दिर थे। पुरातत्व विभाग के श्री टि० ए० गोपीनाथ राव लिखते हैं 'I came upon no less than five images of Buddha within a radius of half a mile from the famous temple of Kamakshi Devi . I was also told that two other megalithic images of Buddha lie buried in a garden adjoining the same temple. The temple of Kamakshi was originally a temple of Tara Devi and as with many other temple of alien faith converted into a Hindu Temple in later times'. पुरातत्व विभाग के श्री पी. आर, श्रीनिवासन् लिखते है—'discovered in the innermost prakarā of the Kamakshi temple in the town raises the question of whether originally this temple was dedicated to this Buddha itself. Perhaps,there was a Buddhist temple here dating from a period earlier than 600 A. D.। कांचीकामकोटि मठ का प्रचार है कि आद्यशंकर का जन्म 509 ईसा पूर्व का था और आचार्य शंकर ने अपने लिए एक मूल जगद्गुरु मठ (अन्यमठाधीश केवल श्री गुरू) की स्थापना कांची में की थी। उसी अवच्छिन्न परम्परा में आये जगद्गुरु कांची कामकोटि मठ के मठाधीश हैं। और इनका आराधित देवीपीठ कामाक्षी है। अब प्रश्न उठता है कि कांची में पाँचवीं से आठवीं शताब्दी ई० तक बौद्धजैन का प्रभाव

अत्यधिक था, उस समय यह कांची मठ कहाँ था ? कामाक्षी मन्दिर सातवीं के अन्त में या आठवीं शताब्दी के बाद ही वैदिक मन्दिर में परिवर्तित हुआ।

अन्तिम गुप्त वंश राजाओं के समय में बिहार में पालवंशीय राजाओं का प्रभुत्व था। ये गौडेश्वर कहे जाने लगे थे। इनका राज्य कामरूप तक था। पालराजा बौद्ध अनुयायी थे। इनकी राजधानी भागलपुर के पास उदन्तपुरी थी। वहाँ बृहत् पुस्तकालय खोला गया था। इसी समय नालन्दा का पतन भी हुआ। विक्रम शिला में मंत्रायन, तंत्रायन, एवं वज्रायन पढ़ाया जाता था। तांत्रिक देवदेवियों का मन्दिर भी यहीं बना।

वात्स्यायन ने वसुबन्धु के सिद्धान्तों का खण्डन किया। दिङ्नाग ने उसका उत्तर 'प्रमाणसमुच्च' में खण्डन करके दिया। उद्योत्कर ने दिङ्नाग के मतोंका खण्डन किया। धर्मकीर्ति ने नैयायिक उद्योत्कर तथा पूर्वमीमांसक कुमारिल भट्ट के तथ्यों का खण्डन कर बौद्ध मत की प्रतिष्ठा की थी। यह निपुण लेखनी का युद्ध काल था। दूर दक्षिण में नायन्मारों एवं शैव सिद्धान्त मतानुयायियों के मतप्रचार द्वारा बौद्ध मत का प्रभाव घटता गया। लगभग 300 ई० से 900 ई० तक वैष्णव मुनियों नें भक्तिमार्ग का प्रचार किया। हीनयान मत ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर को बुद्ध का परिवार स्वीकार किया। अनेक स्थानों में बौद्ध जैन मन्दिर वैदिक मन्दिर में परिवर्तित हुए। कहा जाता है कि महायान का पवित्र ग्रंथ 'सद्धर्मपुण्डरीक' है और यह ग्रंथ वैदिक भगवद्गीता का समानान्तर है। महायानियों ने वैदिक मत से अनेक विषय लेकर अपने मत में मिला लिया है। वैदिक हिन्दू भी बुद्ध को विष्णु का अवतार स्वीकार करने लगे। 'धराबद्धपद्मासनस्थाङ्घ्रियाष्टिर्नियम्यानिलन्यस्तनासाग्रदृष्टिः। य आस्ते कलौ योगिनां चक्रवर्ति स बुद्धः प्रबुद्धोऽस्तु निश्चिन्तवर्ती।' महाबलिपुरम में कुछ शिलाशासनो द्वारा पता चलता है कि सातवीं-आठवीं शताब्दी के पहले से ही बुद्ध को विष्णु का अवतार स्वीकार किया गया है। ग्यारहवीं शताब्दी के क्षेमेन्द्र के 'दशावतार चरित्र' में एवं बारहवीं शताब्दी के जयदेव के गीतगोविन्द में बुद्ध को विष्णु का अवतार स्वीकार किया गया है।

तांत्रिकता का भी युग था। मधु, मांस, मीन, मुद्रा, मैथुन का उपयोग करते थे। शैव, शाक्त, वैष्णव, गाणपत्य, सब प्रकार के तांत्रिकों का प्रभुत्व था। 'हर्षचरित्र' (बाणभट्ट) से मालूम पड़ता है कि भागवत, कपिल, जैन, चार्वाक, काणाद, पौराणिक, ऐश्वर, कारणिक, कारन्धमिन (धातुवाद), बौद्ध, तांत्रिक, शाक्त, पांचरात्र, पाशुपत , इत्यादि मतमतान्तरों की विकृतियों से देश पीड़ित था। भवभूति ने 'मालतीमाधव' में राजशेखर ने 'कर्पूरमंजरी' में कापालिकों का वर्णन किया है।

वैदिक धर्म का बौद्ध धर्म और जैन धर्मसे संघर्ष सदा होता रहा। जैन धर्म व्यापकता में बौद्ध धर्म से कम ही रहा है पर वह प्रभावशाली अधिक था और इसका उदय बौद्ध धर्म से पूर्व ही हुआ था। जैन धर्म किसी सृष्टि कर्त्ता ईश्वर को नहीं मानता है। दिगम्बर मूर्तियाँ नग्न होती हैं और श्वेताम्बर वस्त्रों से आच्छादित रहती हैं। इनमें एक संप्रदाय स्थानकवासियों का है और वे मूर्तिपूजक नहीं होते। जैन दर्शन में न्याय, वैशेषिक और सांख्य सा बहुपुरुषवाद है। संसार को सत्य मानते हैं। ये अनेकत्ववादी हैं। इनका सप्तभंगी न्याय प्रसिद्ध है। जीव को शमदमादि द्वारा शुद्ध कर लेना परम

पुरुषार्थ है। आवागमन को मानते हैं और कारण एवं तैजस् शरीर में विश्वास रखते हैं। जाति-पाँति को मानते हैं। प्रथम शताब्दी ई० में जैन धर्म श्वेताम्बर और दिगम्बर में विभाजित हुआ। उत्तर भारत में श्वेताम्बर का प्रचार खूब हुआ और दक्षिण भारत में दिगम्बर का प्रचार खूब हुआ। कुन्दनाचार्य ने जैन धर्म की नींव दक्षिण भारत में डाली। जैन मन्दिर और स्तूपों का निर्माण जगह-जगह पर हुआ। इसका प्रभाव कर्नाटक, बिहार और काठ्यावाड़ में अधिक था। वेद का तिरस्कार किया गया और अनेकान्तवाद का प्रचार हुआ। अहिंसा युक्त कर्म को प्राधान्य माना गया। दूर दक्षिण में ' चारनार ' घूम-घूम कर जैन मत का प्रचार करते थे। इनके मुख्य उपदेश चार हैं–अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह। ईश्वर में अविश्वास और आत्मा के अस्तित्व में विश्वास, कर्म की प्रधानता तथा भौतिक तत्व का दमन करने के लिए तप की प्रधानता (बाह्य और आभ्यन्तर), ये सब धर्म के मुख्य अङ्ग हैं। पंच-महाव्रत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य। पश्चात् काल में रात में भोजन न करना भी जोड़ लिया गया। मोक्ष प्राप्ति की व्यवस्था-ज्ञान, दर्शन और चरित्र–को त्रिरत्न कहते हैं।

जीवास्तिकाय तीन प्रकार का है–बद्ध, मुक्त और नित्यसिद्ध। पुद्गलास्तिकाय छः हैं– पृथिवी आदि चार भूत, स्थावर और जङ्गम–मनुष्य आदि। परमाणु समुदाय भी इसमें शामिल हैं। सात पदार्थ–जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जर, बंध और मोक्ष। पाँच अस्तिकाय–जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश (लोकाकाश आलोकाकाश)। सात अस्तित्व आदि भङ्गों (प्रकारों का) का संहार सप्त भङ्गी हैं। वस्तुमात्र में अनेकान्तवाद स्वीकार करते हैं। सप्तभङ्गी–1. स्यादस्ति, 2. स्याद्वक्तव्यः (नहीं है), 3. स्यादस्ति च नास्तिच, 4. अस्ति और नास्ति एक काल में नहीं कहे जा सकने के कारण स्याद्वक्तव्यः, 5. स्यादस्ति च अवक्तव्यश्च, 6. स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च, 7. स्यादस्ति च नास्ति च अवक्तव्यश्च।

आचार्य शंकर ने अपने समय की शोकजनक परिस्थिति का उल्लेख भी किया है। यद्यपि आपने संक्षेप में एक या दो परिस्थितियों पर टिप्पणी की है और शोचनीय स्थिति का संकेत किया है (देखये सूत्रभाष्य) तथापि इसके द्वारा उस समय की परिस्थिति का पूर्ण ज्ञान होता है। अन्यत्र उपलब्ध होने वाले विषयों द्वारा (इतिहास एवं ग्रंथ) इसकी पुष्टि भी होती है। गीता भाष्य में आचार्य शंकर कहते हैं "यद्यपि उसका (गीता) अर्थ प्रकट करने के लिए अनेक पुरुषों ने पदच्छेद, पदार्थ, वाक्यार्थ और आक्षेप समाधान पूर्वक उसकी विस्तृत व्याख्याएँ की हैं तो भी लौकिक मनुष्यों द्वारा उस गीता शास्त्र का अनेक प्रकार से परस्पर अत्यन्तविरुद्ध अनेक अर्थ ग्रहण किये जाते देख कर उसका विवेक पूर्वक, अर्थ निश्चित करने के लिए मैं संक्षेप से व्याख्या करुंगा।" आचार्य शंकर ने बौद्ध मत के भिन्न संप्रदायों (पंथ)–बाह्यार्थ, विज्ञान, शून्य, पर आलोचना करते हुए उनका तिरस्कार किया और आचार्य ने बुद्ध के अंतः प्रेरणा पर भी टिप्पणी की है। आप के आगमन से पूर्व के काल की परिस्थिति एवं दर्शन शास्त्र का स्वरूप शोचनीय था और आप कहते हैं 'सब प्रकार से ज्यों-ज्यों इस वैनाशिक सिद्धान्त की उपपत्ति-युक्त करने के लिए परीक्षा की जाती है त्यों-त्यों सिकताकूप के समान विदीर्ण ही होता है। इसमें हम कोई भी उपपत्ति नहीं देखते हैं। अतः वैनाशिक तंत्र व्यवहार अनुपपन्न है। बाह्यार्थवाद,

विज्ञानवाद, और शून्यवाद, परस्पर विरुद्ध इन तीन वादों का उपदेश करते हुए बुद्ध (सुगत) ने अपना असम्बद्धप्रलापित्व स्पष्ट किया है, अथवा विरुद्ध अर्थ प्रतिपत्ति से यह प्रजा मोह को प्राप्त हों, इस प्रकार प्रजा के प्रति अतिविद्वेश किया है। इसलिए श्रेयः अभिलाषी पुरुषों से सब प्रकार से यह बुद्ध सिद्धान्त अनादरणीय है, ऐसा मेरा अभिप्राय है (सूत्र भाष्य 2-2-32)'। आचार्य शंकर कहते हैं कि बुद्ध का शून्यवाद जाँच के योग्य भी नहीं है–'शून्यवादी पक्ष तो सर्वप्रमाण-विरुद्ध है, इससे उसके निराकरण में आदर नहीं किया जाता है (सूत्रभाष्य 2-2-31)'।

इतिहास द्वारा प्रतीत होता है कि जितने भी नवीन धार्मिक विचार या मत के प्रवर्तक थे, उनके जीवन समय में उन नूतन धार्मिक मतों का नाश या पतन नहीं हुआ है। इस नवीन धार्मिक निष्ठा का विस्तार, प्रचार एवं व्याख्या आदि उनके पश्चात् काल के अनुयायी लोगों ने किया था एवं इसके द्वारा आम जनता को अपने धर्म में परिवर्तन करने के एक साधन रूप में प्रसार–प्रचार भी हुआ। इन सब क्रियाकलापों में अधिक समय भी लगता है। मूल बौद्धमत में कालान्तर में भिन्न-भिन्न वाद या शाखाएँ बनाकर प्रचार होने लगा और आचार्य शंकर ने इन्हीं वादों या शाखाओं का खण्डन किया है। यदि आचार्य शंकर का आविर्भाव काल 509 ईसा पूर्व माना जाय तो यह समय लगभग बुद्धदेव के समकालीन हो जाता है और इस काल में सौत्रान्तिक, विज्ञानवाद, शून्यवाद, योगाचार आदि अनेक वादों का प्रचार या प्रसार नहीं हुआ था एवं असङ्ग, वसुबन्धु, दिङ्नाग, नागार्जन, गुणमति, धर्मकीर्ति, द्वारा बुद्धदेव के कई शताब्दी पश्चात् इन वादों की पुष्टि की गयी थी। आचार्य शंकर ने इन वादों का ही खण्डन किया था। ऐसा कोई प्रामाणिक ग्रंथ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि आचार्य शंकर ने बुद्धदेव से भेंट की थी या बुद्धदेव आचार्य से मिले थे। सब शंकर विजय ग्रंथों में स्पष्ट कहा है कि आचार्य शंकर ने बौद्ध मत, जैनमत अनुयायी विद्वानों से मिलकर वाद-विवाद किया था। आर्थात् यह सिद्ध हुआ कि आचार्य शंकर ने बुद्धदेव के पश्चात् कई शताब्दी बाद ही उन मतावलम्बी विद्वानों से भेंट की थी।

पुरातत्व विभाग द्वारा नागार्जुन कोण्डा, अमरावती, जग्गय्यपेटा, आदि स्थलों में भू खुदाई की गयी थी और वहाँ से प्राप्त शिलाशासन एवं अन्य पदार्थों से स्पष्ट मालूम पड़ता है कि आन्ध्र प्रदेश में बौद्धमत का प्रचार व प्रसार अत्यधिक था। इक्ष्वाकु के काल (200 ईसा पूर्व से 400 ई०) में भी प्रचार हुआ। वकटक (500 ई०) के समय भी बौद्धमत का प्रचार खूब हुआ। महायानों के प्रोत्साहन से (550 ई० से 650 ई० तक) मूर्ति बनाने की विद्या व शिल्पकला एवं चित्रविद्या प्रतिष्ठित हुई। एल्लोरा का समय 450 ई० से 650 ई० का है। बौद्ध मत का पतन 650 के पश्चात् ही होने लगा। चीनी यात्री हुवन-च्वाङ्ग इस विषय की पुष्टि करते हैं।

बुद्ध काल के पश्चात् कई शतक बाद, भिन्न-भिन्न मतों का, पंथों का, वादों का और शाखाओं का उदय हुआ और प्रचार-प्रसार भी हुआ। आचार्य शंकर ने इन मतों का, वादों का, संप्रदायों का दोष दिखाकर, निराकरण किया है। आचार्य शंकर ने दिङ्नाग, गुणमति, धर्मकीर्ति के ग्रंथों का निर्देश किया है। आचार्य शंकर का काल असङ्ग,वसुबन्धु,

दिङ्नाग, गुणमति, नागार्जुन, धर्मकीर्ति आदि के पश्चात् का ही है। कथमपि 650 ई० के पूर्व, आचार्य शंकर का आविर्भाव काल हो नहीं सकता।

कांची कामकोटि मठ एवं प्रचारकों का कहना है कि शिवरहस्य, प्राचीन शंकर विजय, बृहच्छंकर विजय, जिनविजय आदि पुस्तकों से साबित होता है कि आचार्य शंकर का आविर्भाव काल 509 ईसा पूर्व का था। कृपया 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठविमर्श' नामक पुस्तक पढ़िये और वहाँ आप प्रमाणयुक्त सविस्तर कांचीमठ की कही जाने वाली प्रमाण-पुस्तकों का विमर्श एवं खण्डन पायेंगे। ये सब अप्रामाणिक, अप्राप्य, अदृष्ट, एवं अश्रुत ग्रंथ-कोटि के हैं।

8. तमिलनाड का प्रख्यात नायन्मार, आळवार, विद्वान-कवियों की रचना

मार्के की बात है कि तामिल महाकाव्य 'मणिमेखलै '(लगभग 600 ई०) में वैष्णव, जैन, बौद्ध, सांख्य, वैशेषिक, लोकायत, आजीविक, आदि मतों का निर्देश है और कहीं भी अद्वैत का नामोनिशान नहीं है। दिङ्नाग के 'न्याय प्रवेश' का निर्देश है। इसी प्रकार कांची के राजा विवित्रचित्तन (580-630 ई०) द्वारा रचित 'मत्तविलास प्रहसन ' पुस्तक में कापालिक, बौद्ध, जैन, लोकायत आदि मतों का निर्देश है और कहीं भी अद्वैतवाद का नाम भी नहीं लिया गया है। यदि कांची में आचार्य शंकर का मूल निजमठ जगद्गुरु परम्परा 509 ई० पूर्व से होता तो कांची के राजा को अवश्य मालूम होता और अन्य मतों के साथ, जिसका निर्देश किया है , इस अद्वैतमत का भी निर्देश करते। प्रथम तीन प्रधान नायन्मार अप्पर, संम्बन्दर एवं सुन्दर की रचनाओं में (सातवीं-आठवीं शताब्दी), एवं आळवार के 'दिव्य प्रबन्ध' में कहीं भी आचार्य शंकर का नाम नहीं लिया गया है या अद्वैतवाद या मायावाद का नामोनिशान नहीं है। परन्तु आचार्य शंकर ने 'तिरुज्ञानसम्बन्दर' का संकेत 'द्रविडशिशु' पद से किया है। कालान्तर में इनके बाद आये वैष्णव आचार्य नादमुनि, यमुनाचार्य आदि ने आचार्य शंकर के मायावाद के बारे में कहा है। कांची वासी श्री रामानुजाचार्य ने भी कहे जाने वाले कांची में प्रतिष्ठित मूल अद्वैत मठ के बारे में कहीं कहा नहीं है। इनके गुरु अद्वैतवाद के प्रकाण्ड विद्वान यादवप्रकाश ने भी कांची में प्रतिष्ठित मूल अद्वैतमठ के बारे में कहा नहीं है। कांची कामाक्षी मन्दिर में अनेकानेक शिलाशासन हैं (पुरातत्व विभाग प्रकाशन), इनमें किसी एक में भी कांची कामकोटि मठ का या कहे जाने वाले जगद्गुरु मठाध्यक्षों का नाम नहीं है। अब संबोधित कांची कामकोटि मठ का मठाधीष कुम्भकोणम् नगर से (जहाँ उनका मठ था), प्रथम बार ब्रिटिश कम्पनी सरकार से अनुमति प्राप्त कर 1839 ई० में कामाक्षी देवी का कुम्भाभिषेक किया और तत्पश्चात् एक शिलाशासन भी लगवा दिया। कम्पनी सरकार ने 1842 ई० नवम्बर माह में कुम्भकोण मठाधीश को प्रथम बार कामाक्षी मन्दिर के 'निरीक्षक' पद पर नियुक्त किया, सो भी कुम्भकोण मठाधीश के प्रार्थना प्रत्र के आधार पर। उस समय में सबों से संबोधित नाम 'कुम्भकोण मठाधीश' था न कि 'कांची कामकोटि मठाधीश'। यदि 509 ईसा पूर्व से कांची में अद्वैतमठ होता तो उक्त महानों ने क्यों कांची मठ के बारे में कुछ नहीं कहा ? प्रख्यात माणिक्क वाचगर ने शंकराचार्य के मायावाद के बारे में कहा है और इनका समय पाण्ड्य देश राजा वरगुणपाण्डियन् II(862-880 ई०) का समय था। अर्थात् सातवीं-

आठवीं शताब्दी ई० में आचार्य शंकर या उनके अद्वैतवाद के विषय में निर्देश नहीं है और नवम शताब्दी में अद्वैतवाद का प्रचार भी हुआ।

ईसा पश्चात् दूसरी शताब्दी के अन्त तक दक्षिण के तोण्डैमण्डलम् सीमा का राज्य भार 'तिरयार' वहन करते थे। शातवाहन के आगमन काल तक कांचीपुर केन्द्र था। शातवाहन साम्राज्य का केन्द्र प्रतिष्ठान था और राज्य सीमा कडलूर तक फैली थी । यह विश्वास किया जाता है कि पल्लव वंशज कांची में लगभग 275 ई० में शातवाहन के अधीन एवं जागीरदारी रिश्ते के आधार पर प्रथम आ बसे और कालान्तर में स्वतंत्र बन बैठे। पल्लव राज्य का केन्द्र कांची था (नवम शताब्दी ई० तक)। तत्पश्चात् पश्चिमी चालुक्य की अधीनता में आये। तत्पश्चात् राष्ट्रकूट और चोल के अधीन यह सीमा आयी। चौदहवीं शताब्दी में विजय नगर के अधीन था। कांची में जैन मत का प्रचार खूब हुआ । यहाँ का जैन कांची प्रसिद्ध है। बौद्धमत का प्रभाव अत्यधिक था। पल्लव राजाओं में कई बौद्धमतानुयायी थे और कुछ राजा वैदिक मतानुयायी थे। इनमें सहिष्णुता थी और भिन्न-भिन्न मतों का इनके राज्य में बेरुकावट प्रचार भी हुआ। पश्चात् शैव मतानुयायी और नायन्मारों ने इनके राज्य में शैवमत का प्रचार किया। इसी तरह वैष्णव मुनियों एवं सिद्ध पुरुषों ने अपने मत का प्रचार किया। एक समय बौद्ध मत इतना व्यापक था कि कांची में 100 से भी अधिक बौद्ध बिहार थे। लगभग सातवीं शताब्दी के अन्त में कांची में राजासिंहेश्वरम् (वर्तमान कैलाश नाथ मन्दिर) मन्दिर का निर्माण हुआ। बादामी चालुक्य वंश के आदित्य (विक्रमादित्य I एवं विक्रमादित्य II) ने कांची पर चढ़ाई की थी पर कांची नगर को नष्ट-भ्रष्ट न करते हुए, राजसिंहेश्वर मन्दिर के लिए स्वर्ण का दान भी दिया। यहाँ के पल्लव शिल्पकारों एवं वास्तु-कला निपुणों को अपने राज्य ले गये और इन्हीं शिल्पकारों ने लोकेश्वर मन्दिर का निर्माण किया था (वर्तमान विरूपाक्षमन्दिर)। 'ज़ेन' बौद्ध धर्म का प्रवर्तक बोधिधर्म कांची से आया था। नालन्दा के धर्मपाल कांची नगर से आये थे। कांची नगर के इतिहास में कहीं भी, किसी ने भी कांची कामकोटि मूल जगद्‌गुरुमठ का या कहे जाने वाले 509 ईसा पूर्व पंन्द्रहवीं शताब्दी ई० तक के मठाध्यक्षों का नाम नहीं लिया है या कहीं भी अद्वैत मठ का निर्देश भी नहीं है।

9. कांची कामकोटिमठ का अभिनव शंकर

कांची कामकोटिमठ की जो यह कल्पित कथा है कि आचार्य ने पाँच बार अवतार लिया और ये पाँचो अवतारी पुरुष कांची मठाधीश थे। इनमें से पाँचवें अवतार पुरुष आप के मठ के 38वें (कहीं 36वाँ), अधीश थे (788 ई० से 840 ई० तक) । आचार्य शंकर के जीवन चरित्र में पाँच मुख्य घटनाओं को लेकर पाँच आचार्यों का जीवनचरित्र लिखा गया है। आचार्य शंकर जो 'अध्यास' विचार के प्रवर्तक थे, उन्हें उसी विचार का बलिपीड़ित बना दिया गया। पाँच अवतारी पुरुषों का विवरण, यथा—

प्रथम अवतार आद्य शंकराचार्य थे, जन्मस्थल कालटी, जन्मकाल ईसा पूर्व 509/508 या 482 या 476 का था, प्रस्थानत्रय भाष्य एवं प्रकरण ग्रंथों के रचयिता। कांची में जगद्‌गुरु परम्परा मूल निजमठ स्थापन, कांची में एक सर्वज्ञ

पीठ का निर्माण एवं उसी पर अधिष्ठित होना तथा कांची कामाक्षी मन्दिर में निर्याण, आदि ।

द्वितीय अवतार कृपाशंकर (सातवाँ या नौवाँ मठाधीश) थे । माठापत्य काल 26-69 ई० का था । यह महान् यथार्थ में 'षण्मत स्थापनाचार्य' थे । इन्होंने एक विश्वरूप को दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठ के मठाध्यक्ष पद पर नियुक्त किया ।

तृतीय अवतार उज्जवल शंकर थे (चौदहवाँ या सोलहवाँ मठाधीश) । माठापत्य काल 329-367 ई० का था । इन्होंने केरल राजा कुलशेखर के तीन नाटकों का वृतान्त पुनः सुनाया और इनके आशीष से राजा महान् कवि बने ।

चतुर्थ अवतार मूकशंकरेन्द्र थे (अठारहवाँ या बीसवाँ मठाधीश) । माठापत्य काल 398-437 ई० का था । आप ही 'मूकपंचशति' ग्रंथ के रचयिता मूक कवि थे । आपने अनेकानेक स्तोत्रों की रचना भी की है जो सब अब आचार्य शंकर के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

पंचम अवतार अभिनव शंकर थे (छत्तीसवाँ या अड़तीसवाँ मठाध्यक्ष), माठापत्य काल 788-840 ई० तक का था । आप पिता के मरणोपरान्त तीन साल पश्चात् विशिष्ठा के गर्भ से चिदम्बर क्षेत्र में पैदा हुए । आप ने भारत-भ्रमण कर दिग्विजय यात्रा सम्पन्न की और अवैदिक मतों का खण्डन कर, विवाद में परास्त किया । काश्मीर स्थित सर्वज्ञपीठ पर आरोहण किया और इनका निर्याणस्थल हिमालय का केदारक्षेत्र है ।

इस कल्पित कथा का समर्थन न कोई प्रामाणिक ग्रंथ करता है, न किसी भी ग्राह्य व अग्राह्य शंकर विजयों में उल्लेख है, न श्रेष्ठों को ग्राह्य है और वृद्ध परम्परा, जनश्रुति पुष्टि करती है । आगे यह भी प्रचार करते हैं कि शंकरविजय ग्रंथ के रचयिताओं ने मूल से कांची कामकोटिमठके अड़तीसवें आचार्य शंकर (V) (788-840 ई०) के चरित्र को ही आद्य शंकराचार्य का (509 से 476 ईसा पूर्व) चरित्र मानकर शंकर विजय गाथा लिखी थी । अपनी कल्पित वंशावली जो 509 ईसा पूर्व से प्रारम्भ होती है, उसे यथार्थ सिद्ध करने के प्रयत्न में इतिहासवेत्ताओं, अन्वेषणकर्ताओं, अनुसन्धान संगठनों, पुरातत्त्वविज्ञों को और वृद्ध विज्ञ विद्वानों के भी अनभिज्ञ होने का प्रचार करते हैं । 1988-89 ई० में भारत सरकार ने आचार्य शंकर का 1200 वाँ जन्म वर्ष समारोह मनाया और अन्य एक समारोह समिति ने जन्मस्थल कालटी से निर्याण स्थल केदारनाथ क्षेत्र तक अनेक प्रान्तीय राज्यों से होते हुए आचार्य शंकर की ज्योति रथयात्रा का आयोजन किया तो उस समय कांची कामकोटि मठ के प्रचारकों ने प्रचार किया कि कांची काम कोटि मठ का अड़तीसवें मठाधीश आचार्य अभिनव शंकर की1200 वीं वर्ष जयन्ती मनायी जा रही है और आद्य शंकराचार्य का जन्म वर्ष 509 ई० पूर्व का है ! धन्य है युक्तिवाद !

'श्री मज्जगद्गुरु शांकर मठ विमर्श' (1963 ई०) पुस्तक में कांचीकामकोटि मठ गुरु परम्परा सूची का विमर्श, द्वितीय खण्ड, अध्याय चार, पृष्ठ 368 से 426 तक में पायेंगे । यहाँ प्रमाण युक्त यह सिद्ध किया गया है कि कहे जाने वाले प्रथमाचार्य से 60 वें कांची मठाधीश तक की परम्परा एक कल्पित सूची है । अभी विद्यमान आचार्य 68-69-70 का काल चल रहा है । दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठ में श्री शंकराचार्य जयन्ती उत्सव 1-5-1979

के दिन संपन्न हुआ। इस प्रसिद्ध शुभ अवसर पर वहाँ एकत्रित हुए चतुराम्नाय मठों (गोवर्धन, शृंगेरी, द्वारका, जोशी) के चार पूज्य जगद्गुरु शंकराचार्यों ने एक पवित्र संदेश पत्र एक विराट धर्मसभा में प्रकाशित किया। यह एक ऐतिहासिक घटना है। आचार्य का यथार्थ जीवनचरित्र जानना हो और भ्रमात्मक प्रचारों से वचना हो तो पाठकों से निवेदन है कि वे इसे अवश्य पढ़ें। इस सन्देश पत्र की नकल इस पुस्तक के अन्तिम परिशिष्ठ भाग में दी गयी है।

कांची मठ की कही जाने वाली मुख्य प्रामाणिक पुस्तकें, 'गुरुरत्नमालिका', 'सुषमा व्याख्या एवं पुण्यश्लोक मंजरी', पुस्तकों में अभिनव शंकर का जीवनचरित्र (788 मई माह से 840 ई० तक) सविस्तार दिया है। आद्यशंकराचार्य के पाँचवें अवतार अभिनव शंकर हैं। गुरुरत्नमालिका (61 श्लोक) और सुषमा व्याख्या में कहा है कि अभिनव शंकर का जन्म चिदम्बर क्षेत्र में विशिष्ठा की कोख से हुआ। आचार्य शंकर के पिता के मरने के तीन वर्ष के उपरान्त शंकर का जन्म हुआ। आद्य शंकराचार्य के विषय में 'आनन्द गिरि शंकर विजय' में भी यही वृत्तान्त दिया है। (गोळक-विधवा पुत्र)। ऐसे अधर्मी, हीन विधवापुत्र को अपनी गुरु परम्परा सूची में मठाधीश एवं आद्य शंकराचार्य का पाँचवाँ अवतारी महापुरुष बनाने में कांचीमठ वाले हिचकते नहीं। इनके गुरु विद्याघन III (758-788 ई० जनवरी माह तक) थे। विद्याघन का निर्याण सुषमा एवं पुण्य श्लोक मंजरी में कहा है—'इह त्रिंशद्वर्षान्प्रभव शरदः पुष्य बहुल द्वितीयां प्रापत्परमुपरमं प्रौढ़नियमी' अर्थात् प्रभव वर्ष, पुष्यमाह, कृष्ण पक्ष द्वितीया के दिन निर्याण हुआ। इसी पुस्तक में आगे कहा है कि अभिनव शंकर का जन्म, 'वैशाखे विभवे सिते च दशमी मध्ये'। अर्थात् विभव वर्ष वैशाख माह, शुक्ल पक्ष, दशमी के दिन अभिनव शंकर का जन्म हुआ। प्रभव वर्ष के बाद विभव वर्ष आता है। इससे स्पष्ट हुआ कि विद्याघन III के निर्याण के पश्चात् ही अभिनव शंकर का जन्म हुआ। गर्भात् अष्ट वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार एवं ब्रह्मोपदेश दिया जाता है। तीव्रबुद्धि या ब्रह्मतेजस बालकों को पांचवें वर्ष में उपनयन संस्कार भी किया जा सकता है। विद्याघन III के मरण के पश्चात् पाँच माह बाद अभिनव शंकर पैदा हुए। अर्थात् पाँच वर्ष पाँच माह तक गुरुपरम्परा की शृंखला विच्छिन्न हो गयी। ऐसी स्थिति में किस प्रकार कहा जाय कि विद्याघन ने अपने शिष्य का उपनयन संस्कार कराकर, विद्याध्ययन कराने के पश्चात् संन्यास की दीक्षा दी थी जैसा कि कांचीमठ की प्रामाणिक पुस्तकों में घोषित करते हैं। अब कांचीमठ प्रचारक कहते हैं कि प्रभव वर्ष को 'भव' वर्ष होने का विषय बदल दिया जाय तो इस प्रश्न का हल हो जायेगा। परंतु कांची मठ की प्रामाणिक व आधार पुस्तक जहाँ वर्ष, माह, पक्ष, तिथि, आदि विवरण दिया गया है, उसमें किस न्याय से तोड़-मरोड़ किया जा सकता है ? प्रामाणिक पुस्तकों में अदल-बदल करना उसकी प्रामाणिकता पर धब्बा मारना है।

कृष्णयजुर्वेद की श्रीरुद्रीय पर टीका एक व्यक्ति अभिनव शंकर ने की है। अभिनव शंकर ने अपनी टीका में सायनाचार्य (चौदहवीं शताब्दी) के विचारों का खण्डन किया है। अर्थात् अभिनव शंकर चौदहवीं शताब्दी के अन्त या पश्चात् काल के हैं। अभिनव शंकर के शिष्य वेंकटनाथ थे। वेंकटनाथ ने अपने गीता भाष्य में मधुसूदन सरस्वती के विचारों का खण्डन किया है। अतः अभिनव शंकर सोलहवीं शताब्दी पूर्व के नहीं हैं। अतः रुद्रीय

टीकाकार अभिनव शंकर कथमपि कहे जाने वाले पाँचवें अवतार अभिनव शंकर नहीं हो सकते।

10. सुधन्वा का ताम्र शासन एवं विमर्श पुस्तक

जगद्‌गुरु शंकराचार्य, द्वारका शारदा पीठाधीश्वर, प. प. श्री राजराजेश्वर शंकराश्रम स्वानि द्वारा रचित ग्रंथ 'विमर्श' (1898 ई०) में, पृष्ठ 29-31में सम्राट सुधन्वा का आचार्य शंकर एवं सुरेश्वर को दिये गये ताम्रशासन की नकल है। इस ताम्रशासन में कहा है कि 2663 युधिष्ठिर युग तिथि में दिया गया है। अर्थात् युधिष्ठिर संवत् 3139 ईसा पूर्व में प्रारम्भ होता है और ताम्रशाशन का काल 476 ईसा पूर्व (3139-2663) का होता है। और यही शंकराचार्य का काल है। 'विमर्श' में मठाधीशों की सूची भी दी गयी है और यहाँ प्रथम से नौ आचार्यों का काल युधिष्ठिर शक में दिया है। दस से अठ्ठाइस आचार्यों का काल विक्रम शक में दिया गया है। 'विमर्श' पृष्ठ 25-27 में आचार्य शंकर की जीवन-घटनाओं की सूची, काल निर्णय के साथ दी गयी है। पश्चात् द्वारका मठ की गुरुपरम्परा सूची ब्रह्मस्वरूपाचार्य (सुरेश्वराचार्य) से नृसिंहाश्रम तक 28 मठाधीश भी हैं। 'विमर्श' पुस्तक 1953 विक्रम शक में लिखी गयी थी। यही काल आचार्य शंकर का जन्म वर्ष 2367 वर्ष है—'आचार्याणाम् अवतार शकाब्दाः 2367'। अर्थात् विक्रम शक का प्रारम्भ 2367 से पुस्तक लेखन काल 1953 को घटाया जाय तो 414 वर्ष आचार्य शंकराचार्य का जन्मवर्ष आता है। विक्रमशकाब्द का प्रारम्भ 57 ईसा पूर्व का है। अतः आचार्य शंकर का जन्म वर्ष 471 ईसा पूर्व का होता है। कांची कामकोटि का कथन है कि आचार्य शंकर का जन्म वर्ष 509 ईसा पूर्व का है। इन दोनों में भिन्नता पायी जाती है। कामकोटि मठ के अनुसार आचार्य शंकर के निर्याण पश्चात् (477 ई० पूर्व) छः वर्ष उपरान्त आचार्य शंकरका जन्म हुआ। (ताम्रशासन के अनुसार 471 ईसा पूर्व का है)।

इस 'विमर्श' पुस्तक की रचना 1896 ई० में हुई थी, (1898 ई० के प्रकाशन के दो वर्ष पूर्व) जैसा कि Colophon में कहा है— "श्री मच्छङ्कर भगवत्पूज्यपादाचार्याणामवतार शकाब्दाः 2367। विक्रम शकाब्दाः 1953 पौषशुक्ल पूर्णिमायां सोमे शिष्य सञ्चारशालिनि राजते वसतिर्मुरादाबाद नगरे।" अर्थात् विक्रम 1953 (1896 ई०) पौषमाह, पूर्णिमा, सोमवार, मुरादाबाद नगर में जहाँ आचार्यजी का पड़ाव था। आचार्यश्री के परम्परा गुरु पूर्वाचार्य का नाम भी दिया है श्री केशवाश्रम स्वामि। विमर्श में चार पृष्ठों की भूमिका भी है जिसे विष्णु शास्त्री ने लिखा था। उक्त शास्त्री द्वारा रचित अन्य पुस्तकें, यथा—अद्वैत साम्राज्य, पर्यटन मीमांसा, त्रिदण्डीमतविभेदिनि, पुरुषार्थ संजीविनि, ज्योतिष्चक्र, आदि भी हैं। यह विमर्श पुस्तक वाराणसी के राजराजेश्वरी यंत्रालय में मुद्रित हुई थी।

'राजा सुन्धवा का नाम आचार्य शंकर के काल का ही उल्लेख करता है', कुछ पुस्तकों में ऐसा लिखा है। आप को इन्द्र का अंश मानते हैं। कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि सुधन्वा उज्जयिनी के राजा थे और कुछ विद्वानों ने इनको कर्नाटक देश का राजा माना है। कुमारिल भट्ट के जीवनचरित्र में भी सुधन्वा के नाम का उल्लेख किया जाता है और कहा जाता है कि भट्टपाद ने सुधन्वा के राजदरबार में बौद्ध विद्वानों से वाद-

विवाद किया था। अदृष्ट एवं अप्राप्य 'जिनविजय' ग्रंथ में भी सुधन्वा के नाम का उल्लेख है। इतिहासवेत्ताओं का अभिप्राय है कि सुधन्वा राजा का नाम नहीं था पर यह एक उपाधि थी जो शासन प्रशस्तियों में उपयोग की जाती थी और सम्भवतः सातवीं-आठवीं ई० के किसी राजा ने इस उपाधि पद को धारण किया हो। 1935 ई० में काशी में जब कुम्भकोण–कांची कामकोटि मठ विषयक विवाद छिड़ा और भ्रामक मिथ्या प्रचारों का भण्डाफोड़ हुआ था तब कांची काम कोटि मठ व उनके प्रचारकों ने कहा–'महाराजा सुधन्वा के ताम्रशासन की सत्यता अभी तक सिद्ध नहीं हुई है और उनको (विद्वानों को) यह स्वीकार भी नहीं है, अतएव इसके आधार पर निर्णय करना भूल होगी'। परन्तु अब आविर्भाव काल के निर्णय–विषय में कांची मठ वाले इस ताम्रपत्र की सत्यता का प्रचार करते हैं।

साहित्य सम्बन्धी पुस्तकों, दार्शनिक पुस्तकों, इतिहास या अन्य किसी स्रोत या माध्यम में पाँचवीं-चौथी शताब्दी ईसा पूर्व काल में सुधन्वा का नाम कहीं भी नहीं पाया जाता है। अर्वाचीन काल में कुछ शंकर विजय की पुस्तकों में सुधन्वा का नाम निर्देशित है। परन्तु प्रश्न यह है कि यह राजा कहाँ वास किये, उनकी राज्य सीमा कहाँ थी और इनका राज्य शासन काल कब था ? अभी तक इन प्रश्नों का उत्तर कहीं भी नहीं मिला। पुराणों में सुधन्वा का नाम पाते हैं, यथा–एक अयोध्या का सूर्यवंशीय सुधन्वा एवं तीन चन्द्रवंशीय जो कौरव, पौरव और मगध के थे। ये परन्तु अति प्राचीन पुराण काल के हैं। कुछ शंकर विजय पुस्तकों में सुधन्वा का नाम दिया है पर इनके बारे में कुछ कहा नहीं है यथा– तथाकथिक अप्राप्य प्राचीन शंकर विजय (आनन्दगिरि), शंकराभ्युदय (तिरुमल दीक्षित), शंकरमन्दार सौरभ (नीलकण्ठ), शंकराभ्युदय (नीलकण्ठ), आचार्य विजय चम्पू (परमेश्वर), शंकर दिग्विजय (माधवाचार्य), भगवत्पादाभ्युदयम् (लक्ष्मण सूरि), शंकर दिग्विजय सार(सदानन्द), आदि। अदृष्ट व अप्राप्य प्राचीन शंकर विजय में कहा गया है कि सुधन्वा सौराष्ट्र देश के राजा थे। कामकोटि मठ का प्रचार भी यही है। कुछ शंकर विजय पुस्तकों में सुधन्वा का नाम भी नहीं लिया है, यथा– शंकरविजय (अनन्तानन्दगिरि), शंकराचार्य चरितम् (गोविन्दनाथ), शंकर विजय (चिद्विलास), गुरुवंश काव्य (लक्ष्मण शास्त्री), शंकर विजय (व्यासाचल), शंकराचार्य विजय खड्गधारा (शंकर दीक्षित), जगद्गुरुरत्नमालास्तव (सदाशिव ब्रह्मेन्द्र)। कामकोटि मठ का प्रचार है कि 'जिनविजय' में सुधन्वा का नाम है पर यह जिनविजय ग्रंथ अश्रुत, अदृष्ट और अप्राप्य कोटि का है। जैन मत विद्वानों ने इस पुस्तक का नाम भी सुना नहीं है। 'आफ्रेक्ट का केटलोगस् केटलोगोरम्' में इस पुस्तक का नाम नहीं है। 'जिनरत्नकोष' में भी इस पुस्तक का नामो निशान नहीं है।

'विमर्श' पुस्तक पृष्ठ 27 में आचार्य शंकर का निर्याण 2663 संवत् कार्तिक शुक्ल पक्ष पौर्णमासी के दिन दिया हुआ है। ताम्रशासन में काल 2663 संवत्, आश्विन माह, पौर्णमासी कहा है। अर्थात् आचार्य शंकर के निर्याण के एक माह पूर्व यह शासन दिया गया था। इस ताम्रशासन में स्पष्ट कहा है कि आचार्य ने भारत की चार दिशाओं में चार आम्नाय मठों की स्थापना की थी और आचार्य ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना नहीं की थी। (ब्रह्मक्षत्राद्यस्मत्प्रमुख निखिल विनेय सम्प्रार्थनया चतस्रोधर्मराजधान्यो द्वारका-बदरी– जगन्नाथ-शृङ्गर्षि क्षेत्रेषु शारदा-ज्योति-गोवर्धन-शृङ्गेरी मठापरसंज्ञकाः

संस्थापिताः ।... एवं चतुर्भ्यः आचार्येभ्यश्चतस्रो दिश आदिष्टा भारतवर्षस्य न एते तत्पीठ प्रणाड्या निजनिजमेव मण्डलं गोपायन्तो 'वैदिकमार्गमुद्भासयन्तु)'। अतः कांची मठ वालों का ज्ञात प्रमाण, पुस्तकें एवं रिकार्ड सब कल्पित हैं। यदि ताम्रशासन सत्य–यथार्थ है तो कांची में आम्नाय मठ स्थापना कल्पित कथा है और यदि कांचीमठ की स्थापना सत्य है तो, 'विमर्श पुस्तक एवं ताम्रशासन' असत्य हैं। कहे जाने वाले ताम्रशासन में कहा है– 'विश्वरूपापरनाम सुरेश्वराचार्यश्च।' कांची मठ प्रचारक टि. एस. नारायणशास्त्री रचित 'एज आफ शंकर' पुस्तक में इस ताम्रशासन की नकल देकर कहते हैं–'मण्डनमिश्रा-परनामधेय सुरेश्वराचार्यश्च।' यहाँ मण्डन मिश्र को सुरेश्वराचार्य कहा है और उक्त नारायण शास्त्री की पुस्तक में मण्डन मिश्र एवं विश्वरूप दोनों भिन्न-भिन्न हैं। क्या इस प्रकार ताम्रशासन के शब्दों को स्वेच्छापूर्ति के लिए बदला जा सकता है ? ताम्रशासन में हस्ताक्षर 'सुधन्व सार्वभौमः' है, और उक्त नारायण शास्त्री ने 'सुधन्वा सार्वभौम' कहा है, हस्ताक्षर में क्यों यह भेद पाया जाता है। उक्त शास्त्री ने ताम्रशासन 'श्री महाकालानाथा नमः' को बदल दिया है। आप का कहना है कि आपने विमर्श पुस्तक से नकल की है।

कांची मठ गुरुरत्नमाला की टीका में कहा है कि मण्डन मिश्र एवं विश्वरूप दोनों भिन्न व्यक्ति हैं और मण्डन मिश्र ही सुरेश्वराचार्य बने। कहे जाने वाले अगोचर बृहच्छंकर विजय के कुछ श्लोक कांची मठ वालों ने प्रकाशित किया है। उसमें भी मण्डन मिश्र एवं विश्वरूप को भिन्न व्यक्ति माना है। ताम्रशासन के अनुसार बदरीमठ के आचार्य तोटक उर्फ प्रतर्दनाचार्य, पृथ्वीधर उर्फ हस्तामलक आचार्य, शृंगेरीमठ के आचार्य, गोवर्धन मठ के आचार्य पद्मपाद उर्फ सनन्दनाचार्य और द्वारका शारदा मठ में विश्वरूप उर्फ सुरेश्वराचार्य परन्तु गुरुरत्नमाला में शृंगेरी में पृथ्वीधव, द्वारका में पद्मपाद, जगन्नाथ में हस्तामलक और बदरी में आनन्दगिरि। अर्थात् पृथ्वीधव एवं हस्तामलक दोनों भिन्न व्यक्ति हैं। ताम्रशासन में सुरेश्वराचार्य का नाम है, और गुरुरत्नमाला में नाम भी नहीं लिखा है। विमर्श में सर्वज्ञ पीठारोहण काश्मीर में कहा है परन्तु कांचीमठ वालों ने कांची में कहा है।'विमर्श' के अनुसार आचार्य शंकर 2662 युधिष्ठिर संवत में कैलास निजधाम जा पहुँचे। पर कांची मठ वालों का कहना है कि आचार्य शंकर काश्मीर से दक्षिण भारत पहुँचे और उनका निर्याण कांची में हुआ। परस्पर विरोधी कथनों को कैसे प्रमाण में लिया जाय ? यदि कांची मठ का प्रचार कथन सब सत्य है तो 'विमर्श' एवं ताम्रशासन असत्य हैं और यदि 'विमर्श' एवं ताम्रशासन सत्य हैं तो कांचीमठ की प्रमाण–पुस्तक एवं कथन सब असत्य हैं। 'विमर्श' पुस्तक पृष्ठ 23 वें में कहा है कि द्वारका मठाधीश श्री नृसिंहाश्रम का जन्म समय 845 विक्रम संवत (788 ई०) वैशाख (माधव) शुक्ल दशमी था और इनको अभिनव आद्य शंकराचार्य होने की कथा भी सुनायी जाती है। इसी प्रकार कांचीमठ के अभिनव शंकर ने भी 788 ई० वैशाखशुक्ल दशमी में जन्म लिया था। कांची मठ का कहना है कि इनको आद्यशंकराचार्य माना गया है। इन दोनों में कितनी समानता है। अर्वाचीन काल में कांचीमठ के विद्वानों ने जिन्होंने कहे जाने वाले सब प्रमाण तैयार किये हैं, सम्भवतः प्राचीन द्वारका मठ से इस विषय को लिया हो। 'विमर्श' पृष्ठ 22 में कहा है कि शंकराचार्य, सुरेश्वराचार्य एवं 'संक्षेपशारीरक' ग्रंथकर्ता सर्वज्ञात्मन द्वारका मठ के आचार्य थे। कांचीमठ वाले भी गुरु परम्परा सूची में आचार्य शंकर, सुरेश्वराचार्य और

सर्वज्ञात्मन को कांची मठाधीश कहते हैं। क्या ये दोनों सत्य हैं ? द्वारका शारदामठ पश्चिमाम्नाय सामवेद का आम्नाय आचार्य मठ है और आद्य शंकराचार्य द्वारा स्थापित मठ है। इन दृष्टान्तों को देने का तात्पर्य यही है कि कांची मठ का ज्ञात रिकार्ड एवं कही जाने वाली प्रमाण पुस्तक सब मनगढ़न्त और कल्पित हैं।

कुम्भकोण-कांची कामकोटि मठाधीश का नाम 'शिक्कुडैयार' था (कर्नाटक भाषा चिक्क उडयार)। Refer Case Nos, A. S. 158,163 and 342of 1930 -In the Court of Subordinate Judge, Chinglepet , judgment reads-"Sikkudayar is the name given to Sri Kanchi Kamakoti Peethadhipati Jagadguru Sri Sankaracharya Swamingal at Kumbakonam. The Sikkudayar Swami is a most powerful person and head of a Mutt in the Tanjore District." सर्वजन सामान्यरुप में उक्त मठाधीश को शिक्कुडैयार या चिक्कउडयार या कुम्भकोण मठ स्वामी नाम से पुकारते थे। शिक्कुडैयार शब्द कर्नाटक भाषा का शब्द है अर्थात् छोटे स्वामी (चिक्क उडयार)। इससे प्रतीत होता है कि दूसरे कोई एक 'दोड्डुउडयार' अर्थात् 'बड़ेस्वामी' रहे होंगे। इनके मठ की मुद्रा (Seal) कर्नाटक भाषा में है।61वें आचार्य से 68वें आचार्य तक सब कर्नाटक ब्राह्मण थे। अपने मठ को 'शारदा मठ' कहते हैं और शक्ति पीठ कामाक्षी–कामकोटि है। (Ref. Madras G. O. No. 1260 Public, 25-8-1915)। दक्षिणाम्नाय शृंगेरी शारदा पीठ मठाध्यक्ष जो 'दोड्डु उडयार' थे, उनके शाखा मठाधीश शिक्कउड्डुयार हैं। कालान्तर में श्रृंगेरी मठ का अधिकार एवं संचालन कम होता गया और ये 'छोटे स्वामी' स्वतंत्र बन गये। बाद में तंजोर राजाओं की सहायता के द्वारा पूर्ण स्वतंत्रता स्थापित कर ली और 'शिक्कुडैयार' नाम भी छोड़ दिया। किसी भी शंकराचार्य ग्रंथ में आचार्य का नाम 'शिक्कुडैयार' या 'दोड्डुउडयार' नहीं दिया गया है। आचार्य परम्परा के किसी ग्रंथ रचयिता ने भी 'शिक्कुडैयार' या 'दोड्डुउडयार' नाम नहीं लिया है। 'छोटे स्वामी '(शिक्कुडैयार) केवल एक बड़े स्वामी (दोड्डुउडयार) के शिष्य ही हो सकते हैं और यह नाम कर्नाटक में शाखा मठ के मठाधीश को दिया जाता है।

कांची में कामकोटि मठ तीन जगहों में हैं—1. कामाक्षी मन्दिर के समीप, 2. शिव कांची, 3. विष्णु कांची और मठ आनादि काल से कांचीमठ के अधीन होने का प्रचार भी करते है। कांची कामाक्षी मन्दिर के सामने की कामाक्षी सन्निधी वीथी में एक मकान है जो (स्वर्गीय) स्थानीकर श्री वांचीनाथ शास्त्री का था, उसे आप की बहू ने दान में कांचीमठ को दिया है। इसके अलावा और कोई मठ या मकान मन्दिर के समीप नहीं है। किसी समय में भी कामाक्षी मन्दिर के समीप इनका मठ नहीं था। कामाक्षी मन्दिर के स्थानीकर नीलकल अरुणाचल शास्त्री ने अपना मकान व विनायक मन्दिर और एक छः खम्भा मण्डप कामाक्षी देवी को दान दिया था और जब जनवरी माह 1843 ई० में प्रथम बार कुम्भकोण मठाधीश को ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी सरकार ने कामाक्षी मन्दिर के 'निरीक्षक' पद पर नियोजित किया था, (सरकारी आज्ञा पत्र नवम्बर पाँच, 1842) तब आपने इस मकान को भी मठ के कब्जे में ले लिया था। विष्णुकांची का मठ, प्राचीन काल में यह जमीन जहाँ अब मठ है वह कांची मठ का न था और अर्वाचीन काल में प्राप्त किया गया था। यह जमीन राज्य सरकार के अधीन थी और बाद में सरकार ने इस

जमीन को टुकड़ों में विभाजित कर निवास के लिए आम जनता को बेच दिया था जिसे 'विलेज साइट्' कहते हैं।' पुराने रिकार्ड का विवरण-Ward No. 1 Revised Survey No. and Sub-division No. 1025/1 to 1048; old Survey No 620-4/Y; Government Purrambokku land; Extent 1-82; Assessment-Nil; Registry-Village site.' शिव कांची शालै वीथी में नम्बर एक मकान ही वर्तमान कांचीमठ है और यही आप का मूल मठ केन्द्र भी है। इसका प्राचीन सर्वे नम्बर 925 है। 'प्राचीन काल में यह इनाम सूखी जमीन थी और यहाँ केवल एकसेन्ट (100 सेन्ट= 4840 वर्गगज) शंकराचार्य के नाम पर है। क्या 48 वर्ग गज जमीन पर प्रख्यात् आद्य शंकराचार्य का स्वमठ निर्माण किया जा सकता है ? अथवा क्या अर्वाचीन काल में पुराने रिकार्डों में बदली कर, क्षेपक रूप में जोड़ दिया गया है ? पुराना रिकार्ड विवरण 'Ward No, IV; Revised Survey No. and Sub division-2377; old Survey No. 925, Inam Dry lands; Extent-O-01 cent; Assessment-o1; Registry Manager Sankaracharya Matham.'

शातवाहन काल से ही ताम्रपत्र शासनों का उपयोग एवं यह शासन रीति देखी जाती है। पाँचवीं, चौथी शताब्दी ईसा पूर्व काल में ताम्र चद्दर पर शासनों का देना, अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। Sohgura ताम्रशासन (छठवीं शताब्दी ईसा पूर्व), Mahasthan शिलालेख (कुछ अंश में प्राप्त हुए हैं) चौथी / तीसरी, ईसापूर्व काल के, अभी तक प्राप्त हुए हैं जो सब ब्राह्मी लिपि में हैं। एक शिलालेख Mandasaur के निकट पालि भाषा और ब्राह्मी लिपि (तीसरी, दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व) में लिखा, सो भी प्राप्त हुआ है। इन शासनों के अतिरिक्त छठवीं-पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व काल का प्राप्त नहीं हुआ है। पाँचवीं-चौथी शताब्दी ईसा पूर्व काल मे संस्कृत एवं पालि भाषा का प्रचलन था और लिपि ब्राह्मी थी। इस तथाकथित् सुधन्वा ताम्रशासन की लिपि क्या थी ? द्वारका मठ की 'विमर्श' पुस्तक में इस विषय में कुछ नहीं कहा है। केवल संस्कृत भाषा का ताम्रशासन 1898 ई० में प्रथम बार प्रकाशित है। ऐसा कौन विद्वान था जिसने ब्राह्मी लिपि को पढ़ा और प्रतिलेख किया ? ब्राह्मी का अध्ययन किये विद्वान भारत में इने गिने थे और हैं। राजा अशोक की शिलापर राजघोषणा सब पालि भाषा में है। यास्क एवं चाणक्य, लगभग उसी काल के हैं, उनकी भाषा, शब्द प्रयोग और लिखने की शैली इस सुधन्वा ताम्रशासन से भिन्न है। इस तथाकथित सुधन्वा ताम्रशासन में पुराकाल की न लेखन शैली है, न पद प्रयोग, उस समय का न कोई व्याकरण प्रबन्ध है और न त्याग दी गयी या अव्यवहार-रीति अपनायी गयी है। पुरातन होने का प्रमाण कुछ भी विद्यमान नहीं है। बहुत से शब्द यहाँ उपयोग किये गये हैं जो सब अर्वाचीन काल के हैं—यथा—'पाश्चिमायां' जो छठवीं-पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व काल में उपयोग नहीं होता था। 'सत्ता' शब्द का यथार्थ अर्थ स्थिति, जीवन, उपयुक्त, दयालु, धार्मिक' के अर्थ में उत्तरी भारत में उपयोग होता था। इस ताम्रशासन में 'सत्ता' पद का उपयोग 'अधिकार, सामर्थ्य' के अर्थ में हुआ है। हिन्दी, मराठी, गुजराती, मारवाडी भाषा में 'सत्ता' शब्द का उपयोग 'अधिकार या सामर्थ्य' के अर्थ में होता है। यह अर्वाचीन काल का प्रयोग है, न कि ईसा पूर्व काल का। 'विमर्श' पुस्तक रचयिता ने 'सत्ता'.शब्द को 'अधिकार या सामर्थ्य' के अर्थ में उपयोग किया है।

(देखिये 'विमर्श' पृष्ठ 32, 33, 35, 37, 38 आदि)। इस ताम्रशासन में युधिष्ठिर शक का नाम लिया है जो बुद्ध काल में न प्रचलित था या न उपयोग होता था। बुद्ध काल के कई शताब्दी पश्चात् युधिष्ठिर शक या कलि शक काल का प्रयोग किया गया था। यह ताम्रशासन अर्वाचीन काल का है।

इस ताम्रशासन में आचार्य शंकर को 'सदाशिव' का अवतार कहा है और यह शासन आचार्य शंकर को जीवन काल में दिया गया है। आचार्य शंकर के जीवन काल में या लगभग इसके समीप काल में किसी ने भी और कहीं भी आचार्य शंकर को अवतारी पुरुष नहीं कहा है। उनके पश्चात् कई पीढ़ी बाद आचार्य शंकर को अवतारी पुरुष मान कर लिखा गया था। आचार्य शंकर के शिष्यों ने उनकी स्तुति व प्रशंसा की है पर कहीं भी यह नहीं कहा कि आचार्य 'सदाशिव' के अवतार थे। भगवत् और अन्य अनेक विशेषगुण संपन्न सूचक शब्दों का प्रयोग किया है जो सब श्रद्धा भक्ति तथा आचार्य शंकर के प्रति गौरव प्रकट करता है। यह ताम्रशासन अर्वाचीन काल का है क्यों कि आचार्य शंकर के पश्चात् काल में ही उनको अवतारी पुरुष होने की मान्यता दी गयी थी।

आचार्य को 'षण्मतस्थापनाचार्य' कहा जाता है परन्तु इस ताम्रशासन में केवल ब्रह्म, शिव, विष्णु, देवी का नाम लिया है और गाणपत्य, कौमार एवं सौर मत का नाम नहीं लिया गया है। पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व काल में इन मतों का प्रचार न होने से शायद ताम्रशासन लेखक ने इन मतों को छोड़ दिया हो ?

द्वारका मठाधीश श्रीनृसिंहाश्रम (788 ई०, जन्मकाल), को अभिनव आद्य शंकराचार्य होने की कथा सुनायी जाती है और यह भी प्रचार करते हैं कि नृसिंहाश्रम स्वामी ने तामिलनाडु में एक ग्राम को जलाकर भस्म कर दिया था, जैसा कि आद्य शंकराचार्य ने भी पूर्व में किया था। क्या आचार्य शंकर का कोई अनुयायी भक्त इस विषय को सत्य मानता है ? जो आचार्य शंकर अपना मुण्ड (शिरोभाग) एक कापालिक को देने लिए के तैयार थे, वे क्या यह कार्य कर सकते हैं ? आगे कहते हैं कि जैनमत साहित्यग्रंथों में नृसिंहाश्रम स्वामी को 'बृहस्पति एवं महामेरु' कहा गया है। क्या यह सम्भव है ? आचार्य शंकर ने जैन मत का खण्डन किया है और जैनमत के विद्वानों ने इनके पश्चात् काल में आचार्य शंकर के मतों का भी तीव्र खण्डन किया है। यह काल लेखनी-युद्ध काल था और परस्पर इन दोनों दलों में मनमुटाव भी था। ऐसी अवस्था में क्या विपक्षी दल के विद्वान प्रशंसा कर सकते थे। ?

'विमर्श' में केदारनाथ एवं अमरनाथ के शिलाशासन के बारे में कहा है। परन्तु अभी तक ऐसा कोई शिलालेख प्राप्त नहीं हुआ है। महाराजाधिराज नेपाल एवं केरल के राजा कुलशेखर के यहाँ से प्राप्त होने वाले रिकार्डो के विषय में भी 'विमर्श' कहता है। परन्तु नेपाल राज्य से प्राप्त पत्र से स्पष्ट मालूम होता है कि यह विषय पूर्णतया मिथ्या है। (Letter ref: Pra. 1/1-03738-1200 of 26.6.1981 to Sri R.M. Umesh)। 'विमर्श' में यही कहा है कि आचार्य शंकर ने बौद्धमतावलम्बी को अपनी दृष्टि से भस्म कर डाला।

ऐसी कथाएँ केवल बौद्धमत 'जातक' कथा पुस्तकों में पाते हैं। क्या आचार्य शंकर ने वास्तव में बौद्धों को मार डाला था ?

'विमर्श' में कहा है कि आचार्य शंकर गगन मार्ग से अरब गये और गगन में ही 64 दिन वास करते हुए अपने मतों का प्रचार किया। उन्हीं के प्रचारों में से कुछ अंश कालान्तर में 'कुरान' ग्रंथ बना। यह दृष्टान्त देने का तात्पर्य यही है कि 'विमर्श' पुस्तक को कहाँ तक प्रमाण में लिया जा सकता है, पाठक गण इस विषय में स्वयं जान लें।

उपर्युक्त ताम्रशासन 1896 ई० (विमर्श रचना काल) में द्वारका मठ में था, अब वह किस प्रकार गुम हो गया ? जो ताम्रशासन द्वारका मठ में अब नहीं है और कभी जिसका परीक्षण पुरातत्व विभाग या अन्य अनुसन्धान संगठन से नहीं कराया गया है ,और एक मुकद्दमे के सम्बंन्ध में अदालत में 1903-4 ई० में दाखिल किया गया एवं अदालत से वापस नहीं लिया गया, उसे अब कैसे प्रामाणिक माना जाय ? ये सब शंकास्पद हैं। ताम्रशासन में दिये गये आचार्य के आविर्भाव काल एवं निर्याण काल, जो सब आचार्य शंकर की रचनाओं से लिये गये आन्तरिक प्रामाणिक विषयों के विरुद्ध भी हैं, और अन्य बाह्य प्रमाण भी विरुद्ध हैं उसे अब कैसे प्रामाणिक माना जाय ? ताम्रशासन की शैली, प्रशस्ति विवरण, पूर्ण ढाँचा, भाषा, व्याकरण-प्रबन्ध, प्रदर्शन शैली आदि पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व काल के नहीं हैं। ब्राह्मी लिपि में लिखा गया संस्कृत भाषा का यह ताम्रशासन (पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व काल) को किसने ब्राह्मी लिपि में प्रतिलेखन का कार्य किया ? उस काल एवं समीप काल के प्राप्त ताम्र-शिला शासनों से तुलना की गयी और इनमें भेद पाया गया। प्रश्न उठता है कि कहाँ तक कांची मठ की प्रमाण पुस्तकें-गुरुरत्नमाला, सुषमा, पुण्यश्लोकमंजरी, प्राचीन शंकर विजय, बृहच्छंकरविजय, जिनविजय, शिवरहस्य, मार्कण्डेय संहिता, आदि पुस्तकें और 'विमर्श' एवं सुधन्वा के ताम्रशासन को प्रामाणिक स्वीकार किया जाय ? विवरण के लिए देखिये—'श्री मज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श', (1963) का द्वितीय खण्ड।

11. आचार्य शंकर की जन्मकुण्डली

कांची कामकोटि मठ के 'बृहत् शंकर विजय' में जो कहीं उपलब्ध नहीं है, दिये गये ग्रहविवरण के आधार पर एक जन्मकुण्डली बनायी गयी जो श्री टि. एस. नारायण शास्त्री रचित पुस्तक 'एज आफ शंकर' एवं श्री नटराज अय्यर व लक्ष्मी नरसिंह शास्त्री रचित पुस्तक 'दि ट्रेडिशनल् एज आफ शंकराचार्य अण्ड दी मठ्स' में प्रकाशित हुयी है। इनके मत में आचार्य शंकर का जन्म काल 2631 युधिष्ठिर शक (509 ईसा पूर्व), नन्दन वर्ष, वैशाख माह, शुक्ल पंचमीं, अभिजित मुहूर्त है। इसके अनुसार ग्रहों की स्थिति इस प्रकार की है—कर्क लग्न, लग्न में गुरु, तुला में शनि, मकर में कुज, मीन में शुक्र, मेष में सूर्य एवं वुध , मिथुन में चन्द्र। विख्यात् ज्योतिषी एवं 'आस्ट्रोलाजिकल मेगजीन' (बङ्गलूर) के संपादक डॉ० वि. वि रामन् की पुत्री प्रख्यात् (ज्योतिषी वेत्ता) श्रीमती गायत्री देवी वासुदेव नें उपर्युक्त कांची मठ प्रचारकों द्वारा दिये गये विवरण के आधार पर जन्मकुण्डली तैय्यार की थी, सो नीचे दी जाती है—कर्क लग्न, वृश्चिक में केतु एवं गुरु, धनु में कुज, मीन में शनि, मेष में बुध और सूर्य , वृषभ में शुक्र एवं राहू, मिथुन में चन्द्र।

इससे निस्सन्देह कहा जा सकता है कि 'वृहच्छंकर विजय' में दी गयी जन्मकुण्डली गलत है।

अन्तरराष्ट्रीय प्रख्यात् ज्योतिषी एवं 'अस्ट्रोलॉजिकल मेगजीन' के संपादक डॉ० वि. वि. रामन् ने इस मासिक पत्रिका के अक्टोबर माह, 1956 अङ्क में, पृष्ठ 731में , 509 ईसा पूर्व जन्मकाल माननेवालों द्वारा दी गयी जन्मकुण्डली ग्रहस्थिति विवरण का खण्डन करते हुए सिद्ध किया कि यह ग्रहस्थिति विवरण गलत है और कहते हैं कि सम्भवतः श्री रामचन्द्र जी की जन्मकुण्डली के अनुसार आद्य शंकराचार्य की जन्म कुण्डली बनाया हो। डॉ० रामन् का अभिप्राय है कि आचार्य शंकर का जन्मकाल वैशाख माह शुक्ल पक्ष, पंचमी तिथि, 44 ईसा पूर्व का है और यह तिथि आप को दक्षिणाम्नाय श्रृंगेरीमठ से प्राप्त हुआ था। पाठक गण कृपया इस पुस्तक के '(ख) समीक्षा विषय भूमिका–ज' में दिये गये विवरण को पढ़ें तो स्पष्ट मालूम होगा कि डॉ० रामन् का उक्त कथन कहाँ तक ठीक है। प्रो० के. श्रीनिवास राघवन् का मत है कि 509 ईसा पूर्व दी गयी कुण्डली के अनुसार कुज ग्रह की स्थिति, मकर राशि नहीं हो सकती और गणित के अनुसार मेष राशि उपयुक्त है। आप का अभिप्राय है कि आचार्य शंकर का जन्म 18.4.608 ईसा पूर्व का है, अर्थात् आचार्य शंकर का जन्म काल बुद्धदेव के जन्म के पूर्व ही हुआ था। यह विषय आचार्य शंकर द्वारा रचित ग्रंथों के अन्तरङ्ग प्रमाणों के विरोध में है और यह मान्य नहीं है। श्री सतीष चन्द्र दास का मत है कि आचार्य शंकर का जन्मकाल 25-4-686 ई० है। अन्य कुछ विद्वानों की मान्यता है कि आचार्य शंकर का जन्म काल 688 ई० का है। के. वि. वेंकट रामन् का अभिप्राय है कि आचार्य शंकर का जन्म काल वैशाख, शुक्ल पंचमी, सोमवार, 7-4-805 का है। आप ने माधवीय शंकर विजय में दिये गये कुछ ग्रह स्थिति विवरणों के आधार पर जन्म कुण्डली तैयार की थी, यथा–कर्कलग्न, लग्न में गुरु, तुला में शनि-राहु, मकर में कुज, मेष में सूर्य-केतु, वृश्चिक में शुक्र-बुध, मिथुन में चन्द्र।

श्री राजेन्द्र घोष ने शंकर विजयों के कथनानुसार आचार्य शंकर की जन्मकुण्डली तैयार की है और उस कुण्डली के आधार पर ग्रहयोग के निदर्शक वर्ष का पताने लगाने का प्रयत्न किया है। आप के मत में 686 ई० में आचार्य का जन्म हुआ था। श्री पिधु अय्यर ने भी एक कुण्डली तैय्यार की थी और आप की राय है कि आचार्य शंकर का जन्म 805 ई० में हुआ। शंकर विजय ग्रंथों में दिया गया ग्रहयोग का वर्णन आचार्य शंकर के काल से अनेक शतक पश्चात् ही लिखा गया था और इन्हें प्रधान प्रमाणों में नहीं लिया जा सकता क्योंकि निस्सन्देह यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि ये सब ग्रह स्थितियाँ वास्तव में थीं। शंकराचार्य विषयक वाङ्मय जो सब आचार्य के अनेक शतक काल पश्चात् काव्यरूप में लिखे गये थे, प्रायः सारे का सारा ऐसे लोगों की कृतियाँ हैं जो उनके भक्त, अनुयायी या प्रशंसक थे, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि सारे वर्णन में कितना अंश ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य है। हर 60 वर्ष या 120 वर्ष में ग्रहों की स्थिति लगभग एक ही सी उपस्थित होती है। 805 ई० की जन्म कुण्डली की ग्रहस्थिति 685-686 ई० में भी आ सकती है। ग्रहस्थिति विवरण–कर्क लग्न और लग्न में गुरु, तुला में शनि और राहु, मकर में कुज, मेष में सूर्य और केतु, वृषभ में बुध और शुक्र, मिथुन में चन्द्र। अतः

कुण्डली के आधार पर निश्चित रुप से निर्णय दिया नहीं जा सकता है। यह विषय पुष्टि प्रमाण में लिये जा सकते हैं।

12. कुमारिल भट्ट एवं कालिदास

श्री एन्. रामेशम् द्वारा रचित पुस्तक 'शंकराचार्य'(1971) में कहा है कि आचार्य शंकर के समसामयिक काल के कुमारिल भट्ट थे और आप ने कालिदास कृतियों से उद्धरण किया है (देखिये तंत्रवार्तिक सूत्र 1-3-7)। 'सताम् नहि सन्देहपदेषुवस्तुषु प्रमाणम् अन्तःकरणस्य वृत्तयः'। कुछ विद्वान कालिदास को पांचवीं शताब्दी ई० पूर्वार्ध काल का होना कहते हैं और कुछ विद्वान 150 ईसा पूर्व काल के पूर्व का नहीं है, ऐसा अभिप्राय रखते हैं। अन्य विद्वानों ने भिन्न-भिन्न काल का प्रतिपादन किया है। निश्चित रूप से किसी काल का निर्णय नहीं किया गया है। श्री रामेशम् की राय है कि आचार्य शंकर का काल 150 ईसा पूर्व से450 ई०तक के बीच का काल है। उनका कहना है कि पतञ्जलि का समय 200 ईसा पूर्व का है। परन्तु यह काल भी निश्चित नहीं है। भिन्न-भिन्न काल का अभिप्राय अनुसन्धान विद्वानों ने भी दिया है। श्री रामेशम् कहते हैं कि काश्मीर का शंकराचार्य मन्दिर जलूका के समय का है, परन्तु राजा अशोक 180 ईसा पूर्व मर चुके थे और जलूका के समय में आचार्य शंकर की काश्मीर विजययात्रा सन्देहास्पद है। किसी एक व्यक्ति का काल निर्णय करके और इस काल के साथ दूसरे किसी एक व्यक्ति का चरित्र सम्बन्ध करा देना या उनके जीवन सम्बन्धी क्रिया-कलापों के साथ जोड़ देना, जबकि इस दूसरे व्यक्ति का काल निश्चित ही नहीं है, या सन्देहास्पद है, या इसके स्वीकार करने से अनेक विप्रपत्तियों का सामना करना संभव हो तो यह निर्णय प्रमाण में नहीं लिया जा सकता। अन्तरङ्ग प्रमाणों द्वारा यह निश्चित है कि उपर्युक्त निर्णय बिलकुल गलत है। कुमारिल भट्ट का काल सातवीं शताब्दी का अन्त या आठवीं ई० का है, यह निश्चित है (देखिये—(ख) समीक्षा—आन्तरिक प्रमाण नं. 20 का विषय)।

13. काश्मीर का शंकराचार्य मन्दिर

काश्मीर के शंकराचार्य पर्वत मन्दिर या—Temple Shankaracharya or Takt-i- Sulaiman के आधार पर आचार्य शंकर का काल निर्णय नहीं किया जा सकता। जनरल कन्निङ्घम ने जनश्रुति कथा पर आधारित अपना मत दिया था, परन्तु फर्ग्यूसन् ने इस मन्दिर के आकार, शैली, ढाँचा आदि पर अन्वेषण कर यह निश्चित किया कि जनरल कन्निङ्घम का मत गलत है। पि. एन्. के, बमजाय रचित पुस्तक 'ए हिस्ट्री आफ काश्मीर' में कहते हैं कि राजा जलूका नें 'ज्येष्ठरुद्र' नाम का एक मन्दिर बनवाकर शिवजी के नाम पर अर्पण किया था। 'इम्पीरियल गजटियर आफ इन्डिया' में लिखा है "Takht-i-Sulaiman-The super structure is not ancient but the massive and high base of the temple is very old and is connected with the worship of Jyeshtha Rudra in whose honour, the legendry king Jaluka built a shrine."। गोपादित्य द्वारा निर्माण कराये गये मन्दिर के बारे में 'राजतरङ्गिनि' में कहा है 'ज्येष्ठेश्वरं प्रतिष्ठाप्य गोपाद्रावार्य देशजाः। गोपाग्रहारान्कृतिना येन स्वीकारिता द्विजाः॥'

पि. ग्वाषलाल द्वारा रचित पुस्तक 'ए शार्ट हिस्ट्री आफ काश्मीर' एवं 'पिल्ग्रीमेजस् इन काश्मीर' (दि हिन्दू पत्र ता: 17-7-1949) में दिया विषय कि गोपादित्य ने शंकराचार्य मन्दिर बनवाया, गलत ठहरता है। 'ज्येष्ठरुद्र' के शिवमन्दिर का निर्माण हुआ, न कि शंकराचार्य मन्दिर का। कुछ प्रचारकों का कहना है कि राजा अशोक के पुत्र जलूका ने शंकराचार्य की यादगार के रूप में एक मन्दिर निर्माण किया था। परन्तु राजतरङ्गिनि में जलूका द्वारा निर्मित मन्दिर के बारे में कहा है– 'प्रतिष्ठां ज्येष्ठरुद्रस्य श्रीनगर्यां वितन्वता। तेन नन्दीश संस्पर्धा न मेने सोदरं विना' ॥ अतः यह स्पष्ट है कि यह एक शिवमन्दिर था और कालान्तर में आचार्य शंकर के काश्मीर के शार्दी ग्राम में स्थित सर्वज्ञपीठ पर आरोहण करने की यादगार में इस शिवमन्दिर स्थित पर्वत को 'शंकराचार्य पर्वत' का नाम दिया गया।

'Gazetteer of Kashmir and Ladhak'(1890 ई०) says -TheTakht-i-Sulaiman is situated rather more than a mile south-east of the town... The Hill rises to the height of 6240 feet above the level of the surrounding plain and overlooks the town of Srinagar, which spreads away to the opposite but lower eminence of the Hari Parbat, in contradistinction to which it is sometimes called by the Hindus "Sir-i-Shur'(Shiva's head). It is also known by the name Sankarachar or Shankaratsari or it may have been so named from Sankara and Chacra, two kings who reigned in Kashmir, A. D. 945-6." यहाँ कहीं शंकराचार्य मन्दिर का नामो निशान नहीं है। जे. एन्. गन्कर एवं पि. एन्. गन्कर द्वारा रचित पुस्तक, 'Buddhism in Kashmir and Ladakh' में लिखता है। '...one ruler of the period who prominently stands out for his patronage of Shaivism and the Brahamanas was Gopaditya, who built a new temple Jeshtheshwara, on the Sankaracharya hill in Srinagar.' प्राचीन काल में यहीं राजा अशोक के पुत्र जलूका ने 'ज्येष्ठरुद्र ' नामक शिवमन्दिर बनवाया था। पुरातत्व एवं अनुसन्धान विभाग, जम्मू काश्मीर राज्य, 1909 ई० के वृतान्त वर्णन में कहते हैं 'a temple on Shankaracharya or Takht-i- Sulaiman न कि शंकराचार्य मन्दिर।'See India-Kashimr', Tourist Division, New Delhi, says 'The temple of Shiva at the summit of the hill was erected on the site of an old temple built in about 200 B. C. by Jaluka , a son of the Emperor Ashoka . The temple was rebuilt by the sixth century A. D. It was substantially repaired by king Lalitaditya , who reigned in the 8th century. The plinth and the low wall, enclosing the temple date back to this time. The rest of the present superstructure is, however, more recent.' अतः यह निश्चित है कि इस आधुनिक शंकराचार्य पर्वत मन्दिर का सम्बन्ध किसी रूप में भी शंकराचार्य के साथ न था।

बि. एल्. शर्मा 'Kashmir Awakes' में लिखते हैं, 'Gopaditya performed

many acts of piety including the construction of a temple on Shankaracharya Hill near Srinagar known by the ancient name Gopadri.' बि. एल्. शर्मा (Kashmir Awakes), पि. एन. के. बमजाय (A History of Kashmir) एवं डॉ० आर. के. पर्मू (A History of Muslim Rule in Kashmir), इन तीनों विद्वानों का कहना है कि राजा तरमान (पाँचवीं शताब्दी ई० अन्त) के पुत्र राजा मिहिरकुल (515 ई०) की वंशीय पीढ़ी में आया पाँचवाँ व्यक्ति गोपादित्य था। इस गोपादित्य ने श्रीनगर के पास 'गुप्कार' नामक एक बस्ती बसायी और ज्योतीश्वर नामक शिवमन्दिर का निर्माण कराया था (तख्त-ऐ-सुलीमिन)। इससे मालूम पड़ता है कि गोपादित्य का काल ईसा पूर्व का नहीं है और कांचीमठ का कथन कि गोपादित्य का काल 417-357 ईसा पूर्व है सो गलत है। इन सब वेत्ताओं का कहना है कि यह एक शिवमन्दिर था, न कि शंकराचार्य मन्दिर। टि. एम्. पि. महादेवन रचित पुस्तक शंकराचार्य में कहते हैं– 'After examining alternative views, Ramachandra Oak comes to the conclusion that the date of Shankaracharaya Temple is 700 A. D. ' यह निश्चित है कि पूर्वकाल में गोपादित्य एवं जलूका ने शिवमन्दिर का निर्माण कराया था और कालान्तर में जब आचार्य शंकर काश्मीर स्थित शार्दी ग्राम में 'सर्वज्ञपीठारोहण' करके सर्वज्ञ बने, तब इस घटना के कुछ काल पश्चात् इसके यादगार में, इस मन्दिर व पर्वत का नाम शंकराचार्य पर्वत मन्दिर पड़ा।

14. नेपाल वंशावली व वृषदेववर्मन

बिक्रमजीत हसरत द्वारा रचित पुस्तक 'हिस्ट्री आफ नेपाल' में कहा है–'I am much inclined to doubt if ever Sankaracharya visited Nepal and believe the debates and struggles by two creeds referred to in this context have relation to what occurred in the plains of India.' वृषदेव वर्मन की कुटुम्ब परम्परा भूमिवर्मन से प्रारम्भ होती है। इस वंशावली के अनुसार वृषदेववर्मन का काल नौवीं शताब्दी ईसा पूर्व का है। इस काल में शंकराचार्य नहीं थे। नेपाल में शंकराचार्य के विषय में कहा जाता है कि आचार्य शंकर 200 वर्ष से भी अधिक काल तक जीवित थे। आचार्य का जन्म उनके पिता के मरण पश्चात् केरल देश में हुआ। शंकर विधवा का पुत्र था। ऐसी असङ्गत चरित्रहीन कथा को कैसे स्वीकार किया जाय? इस वंशावली के आधार पर एक पुस्तक 'History of Nepal', रचयिता डेनियल रैट, प्रकाशित हुई है। इस वंशावली में अंग्रेजों का नेपाल के साथ युद्ध का भी वर्णन है। अब से 200 वर्ष की घटनाओं का भी वर्णन है। इस वंशावली का इतिहास Indian Antiquary, Vol.XIII, 1884, में प्रकाशित हुआ है। इसमें कहा गया है कि अब से 300 वर्ष पूर्व घटित घटनाओं का भी वर्णन है। अतः यह अर्वाचीन काल में रचित ग्रंथ है। इसमें श्रीकृष्ण के समय की भी घटनाएँ वर्णित हैं। सत्ययुग की घटनाओं से यह वंशावली प्रारम्भ होती है। श्री कृष्ण ने नेपाल आकर 'गोपाल' नामक वंशावली प्रारम्भ की थी। इस वंश में 8 राजा थे और इनका राज्यभार काल 521 वर्ष का था। इसके बाद 'अहिर' वंश प्रारम्भ हुआ और यहाँ तीन राजाओं का वर्णन है। इसके पश्चात् 'किराट 'वंश का वर्णन है। इस वंश के

द्वितीय राजा के काल में कलियुग के प्रारम्भ होने की कथा सुनायी गयी है। छठवें राजा के समय में पांडवों का वनवास वर्णित है। किराट वंश के सातवें राजा ने कौरव-पांडवों के बीच युद्ध में पांडवों का साथ दिया था। इसी राजा के समय में बुद्ध नेपाल पहुँचे थे। इस वंशावली के अनुसार श्रीकृष्ण और गौतम बुद्ध समसामयिक काल के थे। गौतम बुद्ध का जन्मस्थल कपिलवस्तु है। आनन्द उनका शिष्य था एवं उन्हें साख्यसिंह कहा जाता था। इन वर्णनों से यही निष्कर्ष निकलता है कि यह बुद्ध वही थे जो बौद्ध मत के प्रवर्तकथे। श्रीकृष्ण के 500 वर्ष जीवित रहने की कथा कही गयी है। विराट वंश के चौदहवें राजा के समय महाराजा अशोक नेपाल गये थे। यह घटना घटी जब श्रीकृष्ण के मरण के पश्चात् 350 वर्ष व्यतीत हो चुके थे। बुद्ध को 31वीं शताब्दी ईसा पूर्व का कहा है। अशोक का काल 2800 ईसा पूर्व का कहा है। इसी ग्रंथ में यह भी वर्णित है कि शंकराचार्य, सूर्यवंशी अठारहवें राजा वृषदेववर्मन के समय नेपाल गये थे। यह भी कहा गया है कि जो शंकराचार्य वृषदेवर्मन के समय आये थे वे 'सातवें अवतारी पुरुष' थे। पूर्व के छः अवतारों में शंकराचार्य हर बार बौद्धों से पराजित हुए और हार के पश्चात् हर एक बार जला दिये गये। इस सांतवें अवतारी पुरुष शंकराचार्य ने 'मनुष्यों की हत्या की,' चुटिया एवं यज्ञोपवीत कटवाया, स्त्री-पुरुष संन्यासियों के बीच विवाह कराया, गृहस्थों को संन्यासी बनाया, पशुबलि करने की आज्ञा दी, आदि ऐसे अवांछनीय शब्दों में आचार्य शंकर का वर्णन है। एक अन्य शंकराचार्य का भी वर्णन है जो राजा वरदेव वर्मन (521 ई०) के समय नेपाल गये थे। आचार्य शंकर के सामने लामा पेशाब करते थे और शंकराचार्य ने उन्हें गालियाँ भी दीं। एक लामा ने अपना कलेजा फाड़कर दिखाया कि उनका आन्तरिक शरीर शुद्ध है और इसी प्रकार शंकराचार्य को भी कर दिखाने को कहा। इस पर आचार्य शंकर डर के मारे भागने लगे और लामा ने उसी समय भाला फेंक कर मार गिराया। इन आठ शंकराचार्यों के वर्णन में से कौन आद्य शंकराचार्य थे ? इस प्रकार की अनेक घटनाएँ हैं जो सब कल्पित, झूठी और गगनकुसुम हैं। अतः वंशावली को अप्रामाणिक ठहराया गया है। नेपाल राज्य ने एक पत्र द्वारा (26.6.1981) स्पष्ट कह दिया कि उनके यहाँ ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जिससे सिद्ध कर दिया जाय कि आचार्य शंकराचार्य नेपाल आये थे।

15. राजा त्रिविक्रम का शैवमार्ग में परिवर्तन

श्री के. टि. तेलङ्ग लिखते हैं कि आचार्य शंकर नें 'त्रिविक्रम' नामधारी एक तामिल देश के राजा (छठवीं सदी ई०) को शैवमार्ग में परिवर्तित कर दिया था। 'कोङ्गुदेशराजाक्कल(Ref : Mackenzie Collection) ग्रंथ में राजा त्रिविक्रम का नाम आता है। प्रो० डौसन का मत यह है कि यह राजा त्रिविक्रम II थे (आठवीं शताब्दी) न कि त्रिविक्रम I(छठवीं शताब्दी ई०)। डॉ० भन्डारकर एक ताम्रशासन के आधार पर राजा त्रिविक्रम I का काल चौथी शताब्दी ई० एवं त्रिविक्रम II का छठवीं शताब्दी ई० कहा है। यह नहीं मालूम कि आचार्य शंकर ने किस त्रिविक्रम राजा प्रथम या द्वितीय का धर्म बदला था। फ्लीट ने इस ताम्रशासन को जाली शासन कहा है (Indian Antiquary, Vol., XII) । डॉ० बर्नल ने कहा है कि यह राजा त्रिविक्रम न चेरदेश के या गंगावंशीय थे पर चालुक्य वंश के थे। आचार्य शंकर एक अद्वैतिन थे न कि विशेष पंथीय शैवमार्गी।

किस प्रकार आचार्य शंकर ने राजा को शैवमार्ग पंथ (द्वैतमार्ग) में बदला होगा ? दक्षिण भारत में शैवों और वैष्णवों का विवाद इतना व्यापक और गम्भीर हो गया था कि वे आपस में लड़ने लगे और एक दूसरे के साथ मनमुटाव का व्यवहार भी होने लगा। यह आपस का झगड़ा निंद्य और अहितकर है और इसको शंकराचार्य के प्रसङ्ग में उठाना और भी अनुचित है। आचार्य शंकर ने जहाँ भागवत मत की अवैदिकता को सिद्ध किया है वहीं पाशुपत मत एवं शैवमार्ग के अन्य पंथों का भी दोषपूर्ण होना प्रतिपादित किया है। उनके ब्रह्म को किसी देवी-देवता के साथ तादात्म्य प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है और न उनका सिद्धान्त (अद्वैतवाद) किसी उपासना शैली से सम्बन्धित है। आचार्य शंकर का काल कथमपि 650 ई० पूर्व का नहीं हो सकता (आचार्य रचित ग्रंथों के आधार पर– आन्तरिक प्रमाण)। किस प्रकार इसे प्रमाण में ले सकते हैं ?

16. डॉ० एस. राधाकृष्णन् का अभिप्राय

यह मेरे लिए गौरव एवं सौभाग्य का विषय है कि माननीय डॉ० एस. राधाकृष्णन् जी (वेदान्त दर्शन के एक प्रकण्ड विद्वान, राष्ट्र एवं अन्तरराष्ट्रोंसे सम्मानित व्यक्ति, राजर्षि, हमारे भूतपूर्व राष्ट्रपति) को मैंने इस पुस्तक में दिये गये मूल विषयों के आधार पर एक लेख पत्र भेजा और मेरे निवेदन पर एप्रिल माह 1966, में उक्त विषयों पर आपने विवेचना की और अन्त में अपनी सम्मति भी दी-सारांश, यथा—

यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि श्री गौडपाद को नागार्जुन (प्रथम या द्वितीय शताब्दी ईसा पश्चात् काल) कां माध्यमिक कारिका की पूर्ण जानकारी थी। यह भी कहा जा सकता है कि गौडपाद यशोमित्र (छठवीं शताब्दी ई०) एवं असङ्ग (तीसरी शताब्दी ई०) की कृतियों से परिचित थे। अतः गौडपाद का काल छठवीं शदाब्दी ईसा पूर्व का नहीं हो सकता है। भावविवेक (छठवीं शताब्दी ई०उत्तरार्ध) के काल से एवं सांख्यकारिका के अनुवाद चीनी भाषा में किये जाने वाले काल से, निस्सन्देह गौड़पाद का काल निश्चित नहीं कर सकते। परन्तु शान्तरक्षित ने गौडपाद के दस कारिका का निर्देष किया है तथा उनका काल आठवीं शताब्दी का मध्यकाल माना है। अर्थात् माण्डूक्य कारिका इस काल के पूर्व लिखा गया ग्रंथ है।

कुमारिल भट्ट ने विन्ध्यवासिन् (पाँचवीं शताब्दी ई०) का निर्देश किया है और शान्तिभद्र की कृतियों पर प्रहार किया है। भट्ट जी ने दिङ्नाग (पाँचवीं शताब्दी उत्तरार्ध से छठवीं शताब्दी पूर्वार्ध) का उद्धरण किया है। भर्तृहरि (पाँचवीं शताब्दी ई० उत्तरार्ध) का 'वाक्यपदीय' में निर्देश है। अतः कुमारिल भट्ट का काल निश्चित रूप से ईसा पूर्व का न होकर सातवीं-आठवीं शताब्दी ई० प्रमाणित होता है। भट्ट जी ने धर्मकीर्ति का खण्डन किया है और धर्मकीर्ति ने भट्ट जी का खण्डन किया है। ये दोनों व्यक्ति समसामयिक हैं। लामा तारा नाथ इसकी पुष्टि करते हैं। अतः भट्ट जी छठवीं शताब्दी ई० के पूर्वकाल के नहीं हैं और आठवीं शताब्दी के पश्चात् काल के भी नहीं हो सकते। शान्तरक्षित ने (आठवीं शताब्दी ई० मध्यकाल) भट्ट जी की कृतियों पर प्रहार किया है। अकलङ्क (आठवीं शताब्दी ई० उत्तरार्ध) ने भट्ट जी का उद्धरण किया है अतः, भट्ट जी का काल

आठवीं शताब्दी का मध्यकाल सिद्ध होता है। अकलङ्क का प्रहार कर्णकगोमिन पर और कर्णकगोमिन का निर्देश उम्बेक का, इसे प्रमाणित करते हैं।

कुमारिल और प्रभाकर समसामयिक थे और प्रभाकर ने भर्तृहरि का निर्देश किया है और धर्मकीर्ति का उद्धरण किया है अर्थात् सातवीं शताब्दी ई० का पूर्वार्ध काल है। हरिस्वामिन (650 ई०) नें प्रभाकरं का उद्धरण किया है। अतएव यह निश्चित है कि कुमारिल भट्ट सातवीं शताब्दी उत्तरार्ध के हैं।

श्री शंकराचार्य ने दिङ्नाग (छठवीं सदी ई० पूर्वार्ध) का उल्लेख करते हुए उन पर प्रहार किया है, अतः आचार्य इनके पश्चात् काल के हैं। आचार्य शंकर एवं सुरेश्वर ने धर्मकीर्ति (सातवीं शताब्दी ई० पूर्वार्ध) का उद्धरण किया है। धर्मकीर्ति ने कहीं भी आचार्य शंकर या सुरेश्वर का निर्देश या उद्धरण नहीं किया है। अतः आचार्य शंकर धर्मकीर्ति के पश्चात् काल के ही सिद्ध होते हैं।

शान्तरक्षित एवं कमलशील द्वारा रचित ग्रंथों में शांकर भाष्य एवं उनसे प्रतिपादित अद्वैत वेदान्त दर्शन का न कहीं निर्देश है, न कहीं उद्धरण। यद्यपि इन ग्रंथकर्ताओं ने उपनिषदवाद के अन्तर्गत अद्वैतवाद की बहस की है। इसी प्रकार हरिभद्रसूरी के ग्रंथों में भी आचार्य शांकर का कहीं निर्देश न होने से, यह कहा जा सकता है कि आठवीं शताब्दी उत्तरार्ध में भी शांकर भाष्य का प्रचार अथवा प्रसार नहीं हुआ था। अतः सिद्ध होता है कि आचार्य शंकर ने आठवीं शताब्दी के अन्त में ही अपने भाष्यों की रचना की थी।

(घ) आविर्भाव काल-निर्णय

आद्य श्री शंकराचार्य का जन्म काल–788 ई०

उपर्युक्त पृष्ठों में प्रमाणपूर्वक यह निश्चय किया गया है कि आचार्य श्री शंकर पूज्यपाद का आविर्भाव काल, सातवीं शताब्दी ई० के मध्यकाल के पश्चात् अर्थात् धर्मकीर्ति के काल के पश्चात् और नवम् शताब्दी ई० मध्यकाल के पूर्व है अर्थात् शांकर भाष्य की व्याख्या भामती (रचयिता वाचस्पति मिश्र) लिखे जाने के पूर्व है। के. बी. पाठक एवं अन्य प्रकाण्ड विद्वानों नें बेलगाँव के गोविन्द भट्ट यार्लेकर द्वारा प्राप्त प्राचीन पुस्तिका के आधार पर 788 ई० जन्म काल का निर्णय दिया है। यहाँ कहा है–'निधिनागेभवह्न्यब्दे विभवे शंकरोदयः ।' अर्थात् 9883 संख्या को 'वामतो' नियमानुसार 3889 वर्ष कलियुग आता है। यह सर्वमान्य सिद्ध है कि कलियुग का प्रारम्भ 3102 वर्ष ईसा पूर्व हुआ है। 3889 वर्ष कलियुग व्यतीत हो जाने के पश्चात् अर्थात् 788 ई० में जन्म हुआ। आचार्य शंकर का निर्याण काल, यथा–'कल्यब्दे चन्द्रनेत्राङ्क वह्न्यब्दे गुहाप्रवेशः वैशाखे पुर्णिमायाँ तु शंकरः शिवतामगात्' कहा है। इसके अनुसार 1293 संख्या आती है और 'वामतो' नियमानुसार 3921 वर्ष कलियुग होता है। अर्थात् 820 ई० में निर्याण काल है।

कृष्णब्रह्मानन्द द्वारा रचित 'शंकर विजय' में उपर्युक्त श्लोक उद्धृत करके 788 ई० जन्म काल का निर्णय दिया गया है। यज्ञेश्वर शास्त्री ने अपने ग्रंथ 'आर्यविद्यासुधाकर' में नीलकण्ठ भट्ट द्वारा रचित 'शंकरमन्दारसौरभ' ग्रंथ का निर्देश किया है। श्री नीलकण्ठ भट्ट ने 'शंकरमन्दारसौरभ' में इसी मत को स्वीकार किया है– 'प्रासूत तिष्य शरदामतियात- वत्यामेकादशाधिकशतोन चतुः सहस्र्याम्' । उल्लूर एस. परमेश्वर अय्यर नें अपने ग्रंथ 'केरल साहित्य' में भी इसी श्लोक को प्रमाण रूप में उद्धृत करके कहा है कि आचार्य शंकर का जन्म काल 788 ई० का है। प्रो० टील 1877 ई० में अपनी पुस्तक 'Outlines of the History of Ancient Religions' में इन विषयों का निर्देश किया है और आपने भी 788 ई० काल को स्वीकार किया है, विवरण के लिए देखिये Indian Antiquary, Vol.XI, 1882. श्री शंकरगिरि ने आचार्य स्तोत्र में इसी मत को अङ्गीकार किया है। उक्त श्लोक की प्रामाणिकता उतनी ही है जितना कि भिन्न-भिन्न अन्य वृतान्त प्रमाण रूप में दिये जाते हैं। परन्तु विद्वान के. बी. पाठक, कृष्ण-ब्रह्मानन्द, यज्ञेश्वर शास्त्री, नीलकण्ठ भट्ट, एस्, परमेश्वर अय्यर, शंकर गिरि, मेक्समुलर, फर्ग्यूसन, विल्सन्, स्नीडर, कारपेन्टर, मेक्डवल, कीत, टील, विन्टरनिट्ज और अन्य भारतीय इतिहास वेत्ता, पुरातत्वविभाग, अनुसन्धान केन्द्र, आदि ने उक्त श्लोक को कामचलाऊ अनुमान के आधार पर प्रथम विचार कर इस बुनियादी विषय पर आगे अन्वेषण किया। इस प्रयत्न में अन्ततोगत्वा यही निष्कर्ष निकाला गया कि इस श्लोक में दिया गया जन्म काल ही अन्तिम निर्णय है। प्रो० हजिमा नाकमुरा ने अपनी पुस्तक The History of Early Vedanta Philosophy में आचार्य शंकर का आविर्भाव काल

(आठवीं शताब्दी ई० पूर्वार्ध शीघ्रकाल) पर सम्पूर्ण अन्वेषण किया है और आपने निम्नलिखित विषयों पर भी ध्यान दिया है, यथा 1. इतिहास पुराण का सिद्धान्त, 2. केरलोत्पत्ति, 3.नेपाल वंशावली, 4. संक्षेपशारीरक' रचयिता का काल, 5. अवैदिक नाना प्राकर के मत एवं आचार्य शंकर, 6. सूत्रभाष्य और अन्य ग्रंथों में दिये गये आन्तरिक प्रमाण, 7. आचार्य शंकर और उनके पश्चात् काल में आये टीकाकार, 8. आचार्य शंकर तथा सुरेश्वराचार्य का सम्बन्ध , 9. आचार्य शंकर के पूर्व आये विद्वान धर्मकीर्ति, दिङ्नाग, भर्तृहरि, नागार्जुन आदि, 10. कुमारिल भट्ट का काल । जयनारायण तर्क पञ्चानन ने आनन्दगिरि शंकर विजय का संपादन किया है जो 1868 ई० में प्रकाशित हुआ है । इस पुस्तक की प्रस्तावना में भी कहा गया है 'गुरुपरम्परयास्माभिः श्रुतं शंकराचार्य समयमपेक्ष्य द्वादशशतवत्सरा व्यतीता इति ।'

परन्तु कुछ विद्वानों ने एवं कुछ अनुसन्धान संगठनों ने 788 ई० के जन्मकाल के विषय पर कुछ विप्रतिपत्ति खड़ी कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि आचार्य शंकर का आविर्भाव काल सातवीं शताब्दी ई० अन्त काल ही युक्तियुक्त है । अर्थात् उनका मत है कि आठवीं ई० अन्त काल जो प्रायः सभी को मान्य है, इस काल से 100 वर्ष पूर्व काल (सातवीं शताब्दी ई० का अन्त) मानना उचित है । आचार्य शंकर ने सातवीं शताब्दी ई० के अन्त में भाष्यों की रचना की थी तो प्रश्न उठता है कि आठवीं शताब्दी ई० के शान्तरक्षित, कमलशील, अकलङ्क आदि विद्वानों ने क्यों नहीं आचार्य शंकर की कृतियों का खण्डन किया, जब कि इन विद्वानों ने कुमारिल भट्ट के मतों का खण्डन किया है, औपनिषदिक अद्वैत मत पर टिप्पणी की है एवं शान्तरक्षित ने गौडपाद की कारिका से अनेक दृष्टान्त भी दिये हैं ? यह कहा जा सकता है कि आचार्य शंकर के भाष्यों पर ये विद्वान वाद-विवाद करने में असमर्थ थे और इसीलिए उन्होंने खण्डन नहीं किया । यह शंका भी गलत है क्योंकि जब श्री रामानुजाचार्य एवं श्री मध्वाचार्य खण्डन कर सकते थे तब इन प्रकाण्ड विद्वानों ने क्यों नहीं खण्डन किया ? यह भी कहा जा सकता है कि इन विद्वानों को आठवीं शताब्दी में आचार्य शंकर का भाष्य उपलब्ध नहीं हुआ हो ? यह वाद भी ठीक नहीं है क्योंकि एक सौ वर्ष उपरान्त भी ये ग्रंथ न उपलब्ध होना असम्भव है, जब कि आचार्य शंकर ने आसेतु हिमालय में दिग्विजय कर बौद्ध, जैन एवं अन्य अवैदिक मतों का खण्डन कर उन सभी को विवाद में पराजित किया था और उनके द्वारा रचित भाष्य एवं अन्य ग्रंथों की सभी विद्वानों को पूर्ण जानकारी थी । यह निस्सन्देह पूर्णतया निश्चित है कि आचार्य शंकर का आविर्भाव काल कथमपि ईसा पूर्व का काल या 650 ई० के पूर्व नहीं हो सकता है । प्रायः सभी लोग, अनुसन्धान कर्ता विद्वान, इतिहासविद, पुरातत्वज्ञ, पाश्चात्यविद्योपासक, अनुसन्धान केन्द्र आदि 788 ई० का काल प्रामाणिक मानते हैं ।

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ एवं भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुस्तक 'Discovery of India' में स्पष्ट लिखा है कि आचार्य शंकर का आविर्भाव काल 788 ई० है । दार्शनिक अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त, राष्ट्रपति, डॉ० एस. राधाकृष्णन् ने अपनी पुस्तक (1923 ई० में प्रकाशित) में 788 ई० को ही स्वीकार किया है और अन्य

रचनाओं में भी इसी मत की पुष्टि हुई है। दार्शनिक प्रख्यात विद्वान एस्. एन. दासगुप्ता नें भी 788 ई० को स्वीकार किया है। इतिहासवेत्ता भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद नें 1954 ई० में कालटी (आचार्य शंकर के जन्मस्थल) में स्पष्ट कहा कि आचार्य शंकर का काल 788 ई० है। आपने अन्यत्र कई लेखों में इसी बात की पुष्टि की है।

यह हर्ष का विषय है कि भारत सरकार ने आदि शंकराचार्य की बारहवीं जन्म शताब्दी, जो 21-4-1988 (वैशाख, शुद्ध पंचमी) के दिन पड़ती है, को उपयुक्त रूप से मनाने के उद्देश्य से एक राष्ट्रीय समिति का गठन किया था और आदेश भी दिया था कि यह राष्ट्रीय समिति बारहवें जन्म शताब्दी समारोह को राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित करने के लिए कार्यक्रम तैयार करें (निर्देश भारत सरकार का राजपत्र असाधारण, भाग 1, खण्ड1, सं–37, नई दिल्ली, शुक्रवार, फरवरी माह, ता० 19, 1988- संकल्प नं, एफ. 14-19/86- शताब्दी कक्ष)। इस समारोह का प्रारम्भ नई दिल्ली से आरम्भ हुआ और भारत सरकार के प्रधान मंत्री ने 21-4-88 के दिन इस शुभसमारोह का उद्घाटन किया था। एक वर्ष तक अनेक कार्यक्रमों के द्वारा, अनेक स्थलों में उत्सव मनाये गये थे। आचार्य शंकर के जन्मस्थल में 21-4-88 के दिन एक विराट सभा का आयोजन किया गया था—वैदिक विधान से पूजा, पारायण, ग्रंथ पठन, होम आदि भी हुए। विशेष रूप से उल्लेखनीय एक कार्यक्रम था जिसके अनुसार आद्यशंकराचार्य की दिव्य मूर्ति भव्य रूप से अलङ्कार युक्त शंकरज्योति के साथ एक रथ में सजाकर दिग्विजय यात्रा के लिए जन्मस्थल कालटी से 21-11-88 के शुभ दिन चल पड़ी। दक्षिणाम्नाय शारदा पीठ शृंगेरी मठाधीश जगद्गुरु शंकराचार्य के आदेश पर एक समिति का गठन भी किया गया–'आदि शंकर ज्योति दिग्विजय यात्रा समिति' और शृंगेरी जगद्गुरु शंकराचार्य इसके पोषक थे। यह ज्योति रथ भारत के अनेक राज्यों से होते हुए आचार्य शंकर के निर्याण स्थल, केदारनाथ क्षेत्र में 18-5-89 के दिन पहुँच कर यह शुभ यात्रा संपन्न हुई थी।

इस पुस्तक में जहाँ-जहाँ कालवर्ष निर्देश किये गये हैं, वे सब प्रामाणिक इतिहास पुस्तकों, अनेक पुरातत्त्व विभागों प्रचुरों, अनुसन्धान संघठनों व केन्द्रों द्वारा प्रकाशित पुस्तकों एवं लेखों, विश्वविद्यालयों मान्य विद्वानों के लेखों आदि से लिये गये हैं। जगह की कमी के कारण यहाँ उन सभी प्रमाणों व आधारों को उद्धृत नहीं किया गया है।

आचार्य शंकर द्वारा रचित ग्रंथों में दिये गये विषयों पर एवं उनके चरित्र सम्बन्धी घटनाओं के विषयों पर ही यहाँ चर्चा एवं समीक्षा की गयी है। ये सब आन्तरिक प्रमाण हैं जो मुख्य एवं प्रधान भी हैं। यदि केवल बाह्य एवं पुष्टि प्रमाणों द्वारा आचार्य शंकर का काल निर्णय किया जाय जो सब आन्तरिक प्रमाणों के विरुद्ध भी है, तो वे प्रामाणिक नहीं कहे जा सकते। आचार्य शंकर ने ठीक ही कहा है–'नहि मृषां कृत्वा कञ्चित् अजरामरो भवति।'

'न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः। यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः।' (मनुस्मृति)। कोई मात्र इसलिए नहीं वृद्ध कहलाता क्योंकि उसके सिरके केश पककर सफेद हो गये हैं। परन्तु युवा होते हुए जो व्यक्ति विज्ञ है, उसे ही देवों ने वृद्ध

होने का विषय माना है। महाकवि कालिदास कहते हैं –"पुराणमित्येव न साधु सर्वं, न चापि काव्यम् नवमित्यवद्यम्। संतः परीक्षान्यतरत्भजन्ते, मूढः परप्रत्ययनेय बुद्धिः ॥" केवल प्राचीन होने के कारण कोई काव्य उत्कृष्ट नहीं कहलाता और अर्वाचीन होने के कारण कोई उसे दोषयुक्त नहीं मानता। विज्ञ सज्जन लोग परीक्षा करके एक को ग्रहण करते हैं और अनभिज्ञ लोग ही प्रचार प्रभावसे प्रभावित होकर अन्यों के मार्गानुयायी होते हैं। ये सब व्यक्ति स्वविचारहीन होते हैं। इस उक्ति से यह कहा जा सकता है कि प्राचीनता के नाम से कहे जाने वाले प्रमाण को उतना महत्व देने की आवश्यकता नहीं है इसलिए कि ऐतिहासिक अकाट्य प्रमाण जो उस प्राचीन नाम से तथाकथित प्रमाण के विरोध में हैं, उनको भी त्याग देने की भूल करनी पड़े। किसी ने कोई गलत मार्ग का अवलम्बन कर परिपाटी आरम्भ की हो और बाद में अकाट्य प्रमाणों द्वारा भूल ठहरायी गयी हो तो उसे ही स्वीकार करना न्याययुक्त है।

भारतीय दर्शन शास्त्र के संशोधकों के अनुसन्धानों के अनुसार यह निश्चित माना गया है कि भाष्यकर्ता आचार्य शंकर का जन्मकाल 788 ई० है। यह भी सिद्ध विषय हैं कि आचार्य शंकर ने चार वेदों के लिए चार दृष्टिगोचर दिशाओं में चतुर्धाम व उनके समीप में चार आम्नायमठों की स्थापना की, काश्मीर स्थित शार्दी में सर्वज्ञपीठ पर आरोहण भी किया था तथा हिमालय के केदारक्षेत्र में शरीर त्याग दिया था। "आम्नायते आमनति धर्माधर्मौ उपदिशति" इससे स्पष्ट है कि आम्नाय मठों का काम धर्माधर्मों का विवेचन कर लोक को धर्म का मर्म समझाना तथा व्यावहारिक जीवन में सत्यधर्म की प्रतिष्ठा करके लोकहित साधना के मार्ग को प्रशस्त करना है। पाश्चात्य और पूर्वी दार्शनिकों ने शंकरदर्शन के इतिहास का पूर्ण अनुसन्धान कर आचार्य के जन्मकाल का निर्णय किया है। इन अनुसन्धानकर्ता विद्वानों के निर्णय को सर्वत्र मान्यता प्राप्त है । जब तक अन्यथा निर्णय न होगा तब तक इसी निर्णय को प्रमाण मानकर चलने में किसी को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए और इस निर्णय की खोज इतिहास के अनुसन्धान-कर्ताओं पर छोड़ देना ही उचित है। उपलब्ध प्रमाणों (अन्तरङ्ग, बाह्य, पुष्टि) के आधार जो निर्णय हुआ है उसी को प्रमाण मानकर चलना युक्तियुक्त है और सही रास्ता है। भाष्यकर्ता आचार्य शंकर द्वारा स्थापित एवं अनुसन्धानों द्वारा निर्णीत चारों आम्नाय मठ (पुरी जगन्नाथ, शृंगगिरि, द्वारका, बदरीनाथ) इसी ऐतिहासिक निर्णय को प्रमाण मानकर चलें तो उत्तम होगा। वर्तमान मान्यता के अनुसार स्वीकृत निर्णय सर्वत्र समान रूप में सम्मानित है। ये आम्नाय मठ एक ही भाष्यकर्ता आचार्य शंकर द्वारा स्थापित समसामयिक होने के कारण वर्तमान मान्यता को स्वीकार कर चलना न्याययुक्त एवं युक्तिसंगत भी है।

॥ ॐ शन्तिः शान्तिः शन्तिः ॥

परिशिष्ट

[ॐ]

सिद्धार्थि-संवत्सर-वैशाख-शुद्ध-पञ्चम्यां श्री मच्छङ्करभगवत्पाद-जयन्त्युत्सवावसरे शृंङ्गगिरिक्षेत्रेसम्मिलितैः चतुराम्नायपीठाधीश्वरैः अनुगृहीतः सन्देशः

पुण्यतमेऽस्मिन् भारते देशे अनादि–काल–प्रवृत्तः सनातन–वैदिक–धर्मः । परं कालस्य कौटिल्यात् उत्कृष्टस्यापि वस्तुनः ह्रासस्य सम्भवात् धर्मस्यास्य विपरिलोपः कदाचिद् ददृशे । सार्ध–सहस्र–द्वयात् समानां प्राक्उत्पन्नं सौगत–मतं वेदेषु प्रामाण्यधियं लोकानाम् अवधूय तान् वैदिक– धर्म– विमुखान् व्यधात् । भूयसोनैहसोनन्तरं तन्मत–निरासाय कुमारिल– भट्टोवततार । तेन च कर्म– मार्गे समुद्धृते ज्ञान– मार्गोद्धरणाय श्रीमच्छङ्करभगवत्पादाचार्याः केरलेषु कालट्यां जनिम् अलभन्त । तेषाम् अवतारात् प्राक् सनातन–धर्म–विरोधीनि मतानि शिरांस्युन्नमय्य लोकान् किंकर्तव्यतामूढान् व्यतानिषुः । भगवत्पादानाम् अवतारसमये कुमारिलादिभिः जनानां कर्म–मार्गे मनाक्श्रद्धोदये सम्पादिते सत्यपि भ्रम–प्रमादादि–दोष–दूषितैः पण्डितंमन्यैः विहितानि त्रय्यन्त–व्याख्यानानि लोकान् श्रेयसः प्रच्यावयन्ति स्म ।

भगवत्पादाः बाल्य एव पारमहंस्यं स्वीकर्तुं संकल्प्य जन्मभूमिं कालटीं परित्यज्य नर्मदा–तीरवासिनां गोविन्दभगवत्पादाचार्याणां सविधे तुर्याश्रमं पर्यग्रहीषुः । ततस्तैरादिष्टाः ब्रह्मसूत्रादीनां भाष्याणि विधाय ज्ञानाध्वनः निष्कृष्टं रूपं प्रादर्शयन् । ततः समग्रं भारतं द्विः प्रदक्षिणीकृत्य तीर्थक्षेत्राणां पुनरुद्धारमकार्षुः । इदं च तत्–तत्–क्षेत्रवासिनां मुखादधुनापि विज्ञायत एव । स्वोद्धृत– धर्म– ज्ञान– मार्गयोः यथावदनुपालनाय पूर्व– पश्चिम–दक्षिणोत्तरासु दिशासु चतुरो मठान् प्रतिष्ठाप्य सुदृढां व्यवस्थां व्यधासिषुः ।

भगवत्पादाः द्वात्रिंशद्–वर्ष–मात्र–परिमिते स्वायुषि समस्त–नास्तिक–मतानि भारताद् उत्सार्य सहस्राधिकासु समासु व्यतीतास्वपि अविकलस्य धर्ममार्गस्य स्थापका इत्यतस्ते परम–शिवावतारभूता इत्युक्तिः नोत्प्रेक्षा नाप्यतिशयोक्तिः अपितु स्वभावोक्तिरेव । ते स्वावतारकार्यं यथावन्निरुह्य संन्यस्त– समस्त– बाह्यार्थाः हिमवत्– केदार क्षेत्रे पाञ्चभौतिकं वर्ष्म परित्यज्य तिरोदधिरे इतीमं विषयं तच्चरित्रप्रतिपादक– ग्रन्थाः केदारक्षेत्र– निवासिनां पारम्परिकी जनश्रुतिः अस्मन्मठेतिहासाश्च एकवाक्यतया निर्णयन्ति । परन्तु एतादृशेषु महानुभावेषु सर्वोपि लोकः स्वाभाविकम् अभिमानम् आवहन् तान् स्व– स्व– प्रदेश– संबन्धिन एव प्रचिचारयिषतीति तु सहजमेव । अत एव नैकाःकिंवदन्त्यः भगवत्पाद–चरित्र–विषये प्रादुरभूवन् । परन्तु ताः कैश्चित् स्वेषु जनानां श्रद्धोत्पादनायैवोद्भाविताः केवलं न तु प्रमाणपदवीम् आटीकन्त इति सर्वैरवगन्तव्यम् । अतो भगवत्पाद– प्रतिष्ठापित– पीठाधिष्ठिता वयं च त्वारोऽपि, 'भगवत्– पादाचार्याः केदारक्षेत्रे एव पाञ्चभौतिक–शरीराद् व्ययुज्यन्त नतु काञ्च्याम् अन्यत्र वा इति निरचैष्म ।

अनादिकाल प्रवृत्त स्व स्व धर्माचरणेनैव लोकाः श्रेयः प्राप्तुं शक्नुवन्ति नान्यथा। तथा स्व–स्व धर्मानुष्ठातृन् लोकान् यदि कोपि प्रलोभ्य वा विभीषिकया वा बलाद् वा द्रव्यदानेन वा धर्मान्तरम् अनुष्ठापयेत् तादृशी रीतिः शास्त्र–सम्मता न्याय–सम्मता वा कथञ्चिदपि न भवेत्। तादृश्या रीत्या यदि केपि स्वधर्म पर्यत्यजन् तर्हि ते स्वस्वपित्रादि–परम्पराप्राप्तमेव धर्मम् अविस्मरन्तः तत्रैव सुदृढं विस्रंभमास्थाय तमेव पूर्व धर्ममनुतिष्ठन्तः श्रेयः प्राप्नुयुः । इदमेव च देशस्याभ्युदय–हेतुः। अतो यः कोपि लोकः स्व–स्व–परम्परा–प्राप्तं धर्मं परित्यज्य नान्यं धर्मम् अनुतिष्ठेद् इति उद्बोधयामः।

अज्ञानान्धकार–निमग्नानाम् अस्माकं योग्यस्य पथः प्रदर्शकानां बहुभी राजभिः परिपाल्यमानेऽस्मिन् भारते चतसृष्वपि दिक्षु कर्म-काण्डस्य ज्ञानकाण्डस्य च बोधकान् मठान् प्रतिष्ठाप्य राष्ट्रैकतायाः प्रदर्शकानां अचिन्त्य–परिमित–शक्ति–युतानां तेषां महात्मनां विषये अस्माभिः प्रदर्शनीया कृतज्ञता इयमेव यत् तत्–प्रदर्शित–धर्मम् अनुष्ठाय श्रेयस् सम्पादनम्।

भगवान् धार्मिकं जीवितं निर्वर्तयितुं सर्वेभ्यः शक्तिम् अनुगृह्णातु राष्ट्रम् इदं धर्म–वैभवेन राजताम् इति च आशास्महे। इति नारायणस्मरणम्।

शृंगगिरिः
सिद्धार्थि–वैशाख–शुक्ल–पञ्चमी
भौमवासरः 1- 5- 1979

1. विद्यातीर्थः (शृंगेरी पीठाधीश्वराः)
2. स्वरूपानन्द सरस्वती (ज्योति पीठाधीश्वराः)
3. श्री अभिनवसच्चिदानन्दतीर्थ स्वामिनः (द्वारका पीठाधीश्वराः)
4. निरञ्जनदेवतीर्थ स्वामी (गोवर्धन पीठाधीश्वराः)